द्वापरका देवता : अरिष्टनेमि

[द्वापरकालीन नेमि-राजुल प्रणय-प्रव्रज्याकी अमर गाथा]

प्रबन्धकाव्य

लेखक

मिश्रीलाल जैन

वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट प्रकाशन

ग्रन्थमाला-सम्पादक व नियामक
डॉ० दरबारीलाल कोठिया,
सेवा-निवृत्त, रीडर जैन-बौद्धदर्शन, प्राच्यविद्या-धर्मविज्ञान-संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी



द्वापरका देवता : अरिष्टनेमि
मिश्रीलाल जैन, एडवोकेट



ट्रस्ट-संस्थापक
आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'



प्रकाशक
मंत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट
१/१२८ बी० डुमरांवबागकॉलोनी,
अस्सी, वाराणसी–५ (उ० प्र०)



प्रथम संस्करण : ५०० प्रति
१९८३



मूल्य : बारह रुपए



मुद्रक :
बाबूलाल जैन, फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी–१०

प्रकाशकीय

'जैन तत्त्वज्ञान मीमांसा' के प्रकाशकीयमें कहा गया था कि 'हम शीघ्र ही डॉ० पन्नालालजी साहित्याचार्यकी मौलिक संस्कृत-रचना **'सम्यक्त्व-चिन्तामणि'**, आचार्य समन्तभद्रके समग्र ग्रन्थोंका संग्रह **'समन्तभद्र-ग्रन्थावली'** और आचार्य विद्यानन्दकी लघुदार्शनिक कृति **'पत्र-परीक्षा'** ये तीन ग्रन्थ भी पाठकोंके समक्ष ला रहे हैं। ये तीनों ग्रन्थ छप चुके हैं। मात्र कुछ सामग्री (प्रस्तावनादि) छपनेके लिए अवशिष्ट है।' साथ ही यह भी सूचना की गयी थी कि 'सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीके सम्पादन व अनुवादके साथ आचार्य देवसेनका **'आराधनासार'** (सटीक) और श्री मिश्रीलालजी एडवोकेट गुनाकी मौलिक कृति **'द्वापरका देवता : अरिष्टनेमि'** ये दो ग्रन्थ प्रेसमें हैं, जो जल्दी प्रकाशमें आवेंगे।'

हमें प्रसन्नता है कि डॉ० पन्नालालजी साहित्याचार्यका महत्त्वपूर्ण मौलिक संस्कृत-ग्रन्थ **'सम्यक्त्व-चिन्तामणि'** प्रकाशित हो गया, जिसका पाठकोंने अत्यधिक स्वागत किया है और जिसकी दो-चार मांगें प्रतिदिन आ रही हैं।

आज श्री मिश्रीलालजी जैन एडवोकेटकी मौलिक अनुभूतिपूर्ण रचना **'द्वापरका देवता : अरिष्टनेमि'** को प्रकाशित करते हुए हमें हर्षोल्लास हो रहा है। यह कृति कैसी हैं, यह पाठक स्वयं निर्णय करेंगे। हम तो यही कहेंगे कि लेखकने इसमें अपना हृदय और भक्तिपूर्ण अनुभूतियोंको उड़ेल दिया है। इसके कई स्थल जहाँ विश्वको युद्धोंसे विरत होने और मानवताकी रक्षा करनेके लिए सम्बोधित करने वाले हैं वहीं अनेक स्थल अरिष्टनेमिके सहसा वैराग्यकी ओर मुड़ने तथा अधव्याही राजुलको छोड़ने एवं उसकी प्रणय-व्यथा, साथ ही धैर्य धारण कर अरिष्टनेमिके पथानुगमन करनेको व्यक्त करने वाले हैं। लेखककी यह स्तुत्य कृति निश्चय ही सब ओरसे सराही जावेगी। हम उनके इस प्रयत्नका हृदयसे स्वागत करते और उन्हें धन्यवाद देते हैं।

हम ट्रस्टके सभी सहयोगी ट्रस्टियों, पाठकों, संरक्षक-सदस्यों और महावीर प्रेसको धन्यवाद देते हैं, जिनके मन-वचन-कायके संयुक्त सहयोगसे ऐसी सुन्दर रचना प्रस्तुत कर सके।

दिनांक ३० ११-१९८३,
अस्सी, वाराणसी-५,

(डॉ०) दरबारीलाल कोठिया
ऑनरेरी मंत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट

अरिष्टनेमि और राजुल : एक परिचय

हरिवंशकी उत्पत्ति :

प्राचीन समयमें इक्ष्वाकुवंशकी तरह क्षत्रियोंका एक वंश 'हरिवंश' था। इस वंशकी उत्पत्तिके विषयमें कहा गया है कि चम्पापुरका राजा चन्द्रकीर्ति बिना पुत्रके मर गया था। राज्यपरम्परा अक्षुण्ण रखने हेतु मंत्रियोंने विचार कर योग्य पुरुषकी तलाश करनेके लिए एक समझदार हाथीको छोड़ा। वह हाथी वनमें पहुँचा और सिंहकेतु तथा उसकी पत्नी विद्युन्मालाको अपनी पीठपर बिठाकर नगरमें ले आया। मंत्रियोंने बड़े आदरके साथ सिंहकेतुका अभिषेक किया और उसे राजसिंहासन पर बैठाया। मंत्रियोंद्वारा उसका परिचय पूछे जानेपर उत्तरमें उसने कहा—'मेरे पिताका नाम प्रभंजन है और माताका नाम मृकण्डू है। कोई देव पत्नीसहित मुझे वनमें छोड़ गया।' उसका परिचय सुनकर मंत्रीगण तथा प्रजाजन बड़े प्रसन्न हुए और मृकण्डूका पुत्र होनेसे उसका नाम-परिवर्तन करके 'मार्कण्डेय' नाम रख दिया। इन दोनोंके 'हरि' नामक पुत्र हुआ। यौवन अवस्थाको प्राप्त होनेपर पिताने उसे राज्यभार सौंप दिया। हरि बड़ा प्रतापी और वीर था। उसने बाहुबलद्वारा अनेक राजाओंको पराजित करके अपने राज्यका बहुत विस्तार किया। उसकी ख्याति सम्पूर्ण लोकमें फैल गयी। इसीसे 'हरिवंश' की प्रसिद्धि हुई।

राजा हरिके महागिरि नामक पुत्र हुआ। महागिरिका हिमगिरि, हिमगिरिका वसुगिरि, वसुगिरिका गिरि हुआ। इस प्रकार इस वंशमें अनेक राजा हुए। फिर सुमित्र हुए। सुमित्रके बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ हुए। मुनिसुव्रतनाथके सुव्रत, सुव्रतके दक्ष, दक्षके ऐलेय पुत्र हुआ। उसने इलावर्धन, ताम्रलिप्ति, माहिष्मती नामक नगर बसाये। ऐलेयके कुणिम पुत्र हुआ। उसने कुण्डिन नगर बसाया। इस प्रकार 'हरिवंश'की परम्परा चलती गयी। फिर इसी वंशमें इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान् नमिनाथ हुए।

यदुवंशकी उत्पत्ति :

आगे चलकर इसी वंशमें 'यदु' नामक राजा हुआ। यह बड़ा प्रतापी था। इससे 'यदुवंश' चला। राजा यदुके नरपति, नरपतिके शूर और सुवीर नामक पुत्र हुए। सुवीर मथुरामें शासन करने लगा और शूर कुशद्य देशमें शौर्यपुर नगर बसाकर वहीं राज्य करने लगा। शूरके अन्धकवृष्णि और सुवीरके भोजकवृष्णि पुत्र हुए। अन्धक-

वृष्णिके १० पुत्र हुए—१ समुद्रविजय, २ अक्षोभ्य, ३ स्तिमितसागर, ४ हिमवान्, ५ विजय, ६ अचल, ७ धारण, ८ पूरण, ९ अभिचन्द्र और १० वसुदेव। इनके अतिरिक्त दो पुत्रियां हुईं—१ कुन्ती और २ माद्री। भोजकवृष्णिके १ उग्रसेन, २ महासेन, और ३ देवसेन नामक तीन पुत्र हुए।

उधर मगधमें राजा वसुका शासन था। उसके सुवसु नामका पुत्र था। वह कुञ्जरावर्त नगर (नागपुर) में रहने लगा था। सुवसुके बृहद्रथ, बृहद्रथके दृढ़रथ पुत्र हुए। इस प्रकार राजा वसुके वंशमे अनेक राजा हुए। इसी वंशमे **जरासन्ध** हुआ। वह राजगृह नगरका स्वामी था। वह नौवां प्रतिनारायण था। उसने भरत क्षेत्रके तीन खण्डोंपर विजय प्राप्त करके अर्धचक्रीका विरुद पाया था।

शौर्यपुरमें सुप्रतिष्ठ मुनिराजका आगमन और अन्धकवृष्णिकी दीक्षा :

शौर्यपुरके उद्यानमे सुप्रतिष्ठ नामक मुनिराज प्रतिमायोग (श्मशान भूमिमें प्रतिमाकी तरह निर्विकल्परूपमें स्थित अवस्था) से ध्यानारूढ़ थे। समस्त उपसर्गों और और परीषहोंको जीतकर घातियाकर्मोंको नाश करते हुए उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। उनके दर्शन करने तथा उपदेश सुननेके लिए वहाँ अपार लोग पहुँचे। महाराज अन्धकवृष्णि भी अपने परिजन-पुरजनोंके साथ गये। उनका उपदेश सुनकर उनके मनमें संसारके प्रति संवेग और वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने शौर्यपुरके राजसिंहासनपर अपने बड़े पुत्र समुद्रविजयका राज्याभिषेक करके उनका पट्टबन्ध किया और सबसे छोटे कुमार वसुदेवके संरक्षणका भार भी उन्हें सोंप दिया। तथा केवली सुप्रतिष्ठके निकट जाकर मुनिदीक्षा ले ली। उधर भोजकवृष्णिने भी मथुरामें मुनिव्रत धारण कर लिया। महाराज समुद्रविजयने महारानी शिवादेवीको पटरानीके पदपर आसीन किया, अपने आठों अनुजोंका युवावस्था प्राप्त होनेपर सुन्दर राजकन्याओंके साथ विवाह भी कर दिया। कुमार वसुदेव छोटे होनेसे सभीके प्रिय और स्नेहभाजन थे।

वसुदेव बचपनसे ही चंचल और कुशाग्रबुद्धि थे। वे कामकुमार थे। बड़े सुन्दर थे। वे जब नगरमें निकलते तो उन्हें देखनेके लिए स्त्रियाँ घरोंसे बाहर निकल आती थीं। उनकी लीलाएँ अनोखी और कभी-कभी प्रजाजनके लिए उत्पातजनक होती थीं। इससे प्रजाजनके अनुरोधपर महाराज समुद्रविजयने राजप्रासादके अन्दर ही उनके रहनेकी व्यवस्था कर दी थी।

एक दिन एक कुब्जा दासी महारानी शिवादेवीके लिए विलेपन लिए जा रही थी कि कुमारने विनोदमे उससे विलेपन छीन लिया। दासी रुष्ट होकर बोली—'कुमार, तुम ऐसी हरकतोंके कारण ही कारागारमें डाले गये हो।' दासीकी बात सुनकर कुमारने सशंकित होकर उससे पूछा—'कुब्जे! तूने यह क्या कहा? मुझे कैसा कारागार?' तब दासीने उनकी सब हरकतोंकी बात कह दी। कुमार सुनकर गम्भीर हो गये और राज-

प्रासादसे चुपचाप बिना किसीको जताये एक लक्ष्यहीन दिशाकी ओर चल दिये। अनेक देशों और नगरोंमें विचरण एवं अपने बुद्धिकौशल (अपनी कलाओं) का प्रदर्शन करते हुए अनेक राजकन्याओंके साथ विवाह किया। उनसे जरत्कुमार, पौण्ड्र आदि पुत्र हुए।

रोहिणीका स्वयंवर और वसुदेवका उसे वरण :

रोहिणीके स्वयंवरमे पणववाद्य बजाकर कुमार वसुदेवने रोहिणीको प्राप्त किया। स्वयंवरमें जरासन्ध, समुद्र-विजय आदि राजागण भी आये थे।

कुमार वसुदेवने अपना रूप बदलकर पणववादकका वेष बनाकर रोहिणीको प्राप्त किया था। इसपर जरासन्ध, समुद्रविजय आदि राजा रुष्ट हो गये और उससे युद्ध करने लगे। युद्धके समय समुद्रविजय पणववादकसे बोले—'प्रिय, मैं समुद्रविजय हूँ.....'। कुमार पणववादक पुरुषका वेष बदले हुए थे ही, आवाज भी बदलकर बोले—'तात, चिन्ता न करें। आप समुद्रविजय हैं तो मैं संग्रामविजय हूँ। पहले बाण आप चलावें।' जब बहुत समय युद्ध करते हुए व्यतीत हो गया, तब कुमारने अपने नामसे अंकित एक बाण सन्देशसहित अपने बड़े भ्राताके पास भेजा। सन्देशमें लिखा था—'जो अज्ञात रूपसे निकल गया था वही मैं आपका अनुज वसुदेव हूँ। आज सौ वर्ष पश्चात् पुनः आत्मीय जनोंके निकट आया हूँ। मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ।'

समुद्रविजय रथसे कूदकर भुजा पसारे अपने छोटे भाईकी ओर दौड़ पड़े। वसुदेव भी रथसे उतरकर आगे बढ़े और अपने आदरणीय अग्रजके चरणोंमें गिर पड़े। बड़े भाईने उन्हें उठाकर अपने अंकमे भर लिया। अन्य भाई भी आ गये। सभी गले लग कर मिले। जरासन्ध आदि राजा भी वसुदेवका परिचय पाकर बड़े सन्तुष्ट हुए। फिर शुभ वेलामे वसुदेवका रोहिणीके साथ विवाह हो गया।

बलरामका जन्म :

एक दिन रोहिणीने रात्रिके पिछले प्रहरमें चार शुभ स्वप्न देखे, जिनका फल वसुदेवने अत्यन्त धीर, वीर, अजेय और पृथिवी-पति पुत्रका जन्म होना बतलाया। रोहिणी पतिसे स्वप्नोंका फल जानकर बहुत हर्षित हुई, महाशुक्र स्वर्गसे च्युत होकर एक महासामानिक देव रोहिणीके गर्भमे आया। नौ माह पूर्ण होनेपर शुभ नक्षत्रमें पुत्र-जन्म हुआ। वसुदेव और रोहिणी उस समय अरिष्टपुर नगरमे अपने ससुर राजा रुधिरके यहाँ ही ससुरालका आनन्द ले रहे थे। राजा रुधिरने दौहित्रका धूमधामसे जन्मोत्सव मनाया और बालकका नाम 'राम' (बलराम) रखा। समुद्रविजय भी तब वहीं थे। उनकी आज्ञासे वसुदेव गगनवल्लभपुर गये और वहाँ अपनी प्रिया वेगवतीसे मिले तथा विद्याधरीकी पुत्री बालचन्द्राके साथ विवाह किया। कुमार वसुदेव गगनवल्लभपुरसे अपनी दोनों पत्नियोंको लेकर शौर्यपुर पहुँचे। समुद्रविजय इससे पहले ही पहुँच गये। जनता और राजा समुद्रविजयने उनका हर्षोल्लासके साथ स्वागत किया।

कंसका वसुदेवसे शस्त्रविद्या-शिक्षण और जरासन्धकी पुत्रीके साथ विवाह :

वसुदेव शस्त्र-विद्यामें बड़े निपुण थे। वे राजकुमारोंको शस्त्र-विद्या सिखाने लगे। उनमें कंस नामक एक कुमार भी था। वे एक बार जरासन्धसे मिलनेके लिए कंसको लेकर राजगृह गये। जरासन्धका शत्रु सिंहरथ उसे बहुत परेशान करता था। जरासन्धने घोषणा की थी कि 'जो सिंहपुरके स्वामी सिंहरथको जीवित पकड़कर लायेगा, मैं अपनी पुत्री जीवद्यशाका विवाह उसके साथ कर दूँगा।' वसुदेवने युद्धमें सिंहरथको बाणोंसे भेद दिया और कंस द्वारा उसे पकड़वा लिया तथा उसे जीवित जरासन्धके समक्ष प्रस्तुत कर दिया। जरासन्धने अपनी घोषणाके अनुसार जीवद्यशाका विवाह वसुदेवके साथ ज्यों ही करना चाहा, त्यों ही, बीचमे ही उन्हें रोककर कहा कि 'सिंहरथको हमारे शिष्य कंसने पकड़ा है। इस वीर युवकके साथ ही अपनी पुत्रीका विवाह करें।' जरासन्धने राजकुमार कंसका परिचय लेकर उसके साथ जीवद्यशाका विवाह कर दिया। कंसने वसुदेवको युद्धमे सहायता की थी। इससे प्रसन्न होकर वसुदेवने बरदान दिया था, जिसे उसने उनके पास ही धरोहर रख दिया और यथासमय माँग लेनेको कह दिया।

कंसने अपने परिचयमे बताया था कि 'उसकी माता मंजोदरी कौशाम्बीमें रहती है और मदिरा बनानेका कार्य करती है', जरासन्धको कुमार कंसके रूप और शौर्यको देखकर उसकी बातपर विश्वास नही हुआ। अतः उसने तत्काल अपने सैनिक भेजकर कौशाम्बीसे मंजोदरीको बुलवाया और उसे सही बतानेके लिए कहा। उसने बताया— 'जब मैं एक दिन यमुना तटपर नहानेके लिए गयी हुई थी तो एक मंजूषा बहती देखी। उसे निकाल लिया और उसमें एक शिशुको देखकर मुझे दया आ गयी। मैं उसे घर ले आयी। बड़े प्यारसे पाला-पोसा। किन्तु किशोरावस्था आनेपर उसकी जब उद्दण्डतायें देखी तो मैंने उसे घरसे निकाल दिया। यह कही जाकर शस्त्र-विद्या सीखने लगा, कांसकी मंजूषामे निकला था, इसलिए इसका नाम 'कंस' रख दिया था।' मंजोदरीने मंजूषा और मंजूषामे रखा लेख दोनों सम्राट् जरासन्धको दे दिये। लेखमे लिखा था—'यह राजा उग्रसेन और रानी पद्मावतीका पुत्र है। जब यह गर्भमें था, तभीसे यह उग्र था। इसके जन्म लेनेपर ज्योतिषियोंसे इसे अनिष्टकारी ज्ञातकर त्याग दिया है।' जरासन्धको विश्वास हो गया कि यह राजकुमार है।

कंसकी कुटिलता और दुष्टता :

कंसको जब यह मालूम हुआ कि उसके पिताने मंजूषामें रखकर उसे यमुनामें बहा दिया था, तो उसे पितापर बहुत रोष आया और बदला लेनेके भावसे उसने जरासन्धसे मथुराका राज्य मांगा। जरासन्धने अपने दामाद (कंस) को मथुराका राज्य दे दिया। कंस विशाल सेना लेकर मथुरा आया और पिता उग्रसेनके साथ युद्ध करके उसे कारागारमें डाल दिया और स्वयं मथुराका शासक हो गया।

वसुदेव और देवकीका विवाह :

कुछ दिनोंके बाद कंसने अपने शस्त्र-विद्या गुरु वसुदेवको मथुरा आनेके लिए आमंत्रित किया। वसुदेव उसका आमंत्रण स्वीकार कर मथुरा पहुँचे। कंसने उनसे उपकृत होनेसे उनके साथ अपनी बहन देवकीका ससम्मान विवाह कर दिया। वसुदेव उसके आग्रहसे वहीं मथुरामें रहने लगे।

एक दिन अतिमुक्तक नामके निर्ग्रन्थ मुनि आहारके समय राजमन्दिर पधारे। कंसपत्नी जीवद्यशाने उन्हें अपनी ननद देवकीका आनन्द-वस्त्र दिखाकर उनसे उपहास किया। इससे मुनिको क्षोभ आ गया। उन्होंने क्रोधमें कहा—'मूर्खे! तू शोकके स्थानमें आनन्द मान रही है। इसी देवकीके गर्भसे उत्पन्न बालक तेरे पति (कंस) और पिता (जरासंध) का संहार करेगा।' यह कह कर वे वहाँसे चले गये।

अब जीवद्यशाने मुनिकी भविष्यवाणी अपने पति कंसको सुनाई तो वह चिन्तित होकर वसुदेवके यहाँ पहुँचा और उनसे बड़ी विनयके साथ बोला—'आर्य! मुझे आपने वरदान दिया था। वह अब माँगना चाहता हूँ।' वसुदेवने 'तथाऽस्तु' कहकर कंससे वरदान माँगनेको कहा। कंस बोला—'बहन देवकी प्रसूतिके समय मेरे घरपर रहा करे।' वसुदेवको अतिमुक्तक मुनिराजकी भविष्य-वाणीका पता नहीं था। किन्तु अब उन्हें उसका पता लगा और कंसकी दुरभिसन्धि ज्ञात हुई तो वे मुनिके पास पहुँचे। साथमें देवकीको भी ले गये। दोनों मुनिराजको नमस्कार करके उनके पास बैठ गये। मुनिराजने उन्हें आशीर्वाद दिया। वसुदेवने उनसे पूछा—'भगवन्! मेरा पुत्र इस पापी कंसका संहार कैसे करेगा।' मुनिराज अवधिज्ञानके धारक थे। वे बोले—'राजन्! इस देवकीका सातवाँ पुत्र शङ्ख, चक्र, गदा और धनुषका धारक नारायण होगा। वह कंस और जरासंध आदि शत्रुओंका वध कर अर्धचक्रीश्वर बनेगा। शेष छहों पुत्र चरम-शरीरी होंगे। रोहिणीका पुत्र रामभद्र (बलराम) बलभद्र है। तुम्हें किसी प्रकारकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

वसुदेव और देवकी मुनिराजके उत्तरसे सन्तुष्ट होकर लौटे। वसुदेव कंसकी दुरभिसन्धिको जान गया। फिर भी वे उसके साथ मित्रता रखकर वहीं मथुरामें रहने लगे।

देवकीने तीन बार गर्भ धारण किये और तीनों बार युगल पुत्र हुए। इन्द्रकी आज्ञासे सुनैगमदेवने तीनों बार देवकीके पुत्रोंको सुभद्रिल नगरके सेठ सुदृष्टिकी पत्नी अलकाके यहाँ और अलकाके तीनों बार हुए मृत युगल पुत्रोंको देवकीके यहाँ पहुँचा दिया। वसुदेवने अपने दिये वचनके अनुसार देवकीको गर्भवती होनेपर प्रसूतिके लिए कंसके यहाँ तीनों बार भेज दिया। कंसने उन मृत युगल-पुत्रोंको तीनों बार शिलापर

पछाड़ दिया। अलकाके यहाँ पहुँचाये गये वे छहों पुत्र शुक्लके चन्द्रमाके समान बढ़ने लगे। उनका रूप, लावण्य और पुण्य अद्भुत था। उनके नाम थे—१ नृपदत्त, २ देवपाल, ३ अनीकदत्त, ४ अनीकपाल, ५ शत्रुघ्न और ६ जितशत्रु।

नारायण कृष्णका जन्म :

एक दिन देवकीने रात्रिके पिछले पहरमें सात शुभ स्वप्न देखे। प्रथम स्वप्नमें उगता हुआ सूर्य, दूसरेमें पूर्ण चन्द्रमा, तीसरेमें दिग्गजों द्वारा अभिषिक्त लक्ष्मी, चौथेमें आकाशसे उतरता हुआ विमान, पाँचवेंमें ज्वालाओंसे युक्त निर्धूम अग्नि, छठेमें रत्नोंकी किरणोंसे दीप्त देवध्वज और सातवेंमे अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ सिंह देखा। प्रातः उठकर देवकी अपने पतिके पास पहुँची और उत्सुकतासे स्वप्नोंका फल उनसे पूछा। वसुदेव इन शुभ स्वप्नोंको सुनकर प्रसन्न हुए और उनका फल एक-एक करके बतलाते हुए कहा कि 'देवि! तुम्हारे ऐसा प्रतापी पुत्र होगा, जो समस्त पृथिवीका स्वामी होगा। वह बड़ा पुण्यशाली और प्रभावशाली होगा।' देवकी अपने स्वप्नोंका फल सुनकर बहुत हर्षित हुई। उसी दिन कोई पुण्य जीव देवकीके गर्भमें आया। गर्भ धीरे-धीरे बढ़ने लगा। कंस गर्भके महीनों और दिनोंको चुपचाप गिनता जाता था। सामान्य बालक और उसके स्वयंसे ६ बालक नौ माह पूर्ण होनेपर हुए। किन्तु कृष्णका जन्म सातवें महीनेमे ही श्रवण नक्षत्रमे भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको हो गया। सद्यःजात बालकके शरीरपर शंख, चक्र आदि शुभ चिह्न थे। शरीरका वर्ण और कान्ति नीलमणिके समान थी। बालकके पुण्य-प्रभावसे बन्धु-बान्धवोंके घरोंमें शुभ शकुन होने लगे और शत्रुओंके घरोंमें अशुभ शकुन होने लगे। सात दिनोंसे आकाश मेघाच्छन्न था। काली अँधियारी छाई हुई थी। घनघोर वर्षा हो रही थी। वसुदेव और बलरामने परामर्श करके निश्चय किया कि बालकको यथाशीघ्र नन्दगोपके घर पहुँचा देना चाहिए, वहीं इसका पालन-पोषण होगा। यह सब देवकीको भी बता दिया। बलरामने बालकको गोदमें ले लिया, वसुदेवने उसपर छत्र लगा लिया और उस घोर अँधियारी रातमे वर्षामें ही दोनों चल दिये। सारा नगर बेसुध सो रहा था। अन्धेरेमें राह नहीं सूझती थी। किन्तु बालकके असीम पुण्यके प्रभावसे रास्तेमें प्रकाश हो रहा था। गोपुरके द्वार बन्द थे। किन्तु बालकके चरणस्पर्श होते ही द्वार खुल गये। तभी पानीकी एक बूँद बालककी नाकमें घुस गई, जिससे उसे छींक आ गयी। छींकका शब्द सुनकर गोपुरके ऊपरी भागमे कारागृहमें बन्दी कंसके पिता उग्रसेनने आशीर्वाद दिया—'तू निर्विघ्न रूपसे चिरकाल तक जीवित रहो। पिता-पुत्र इस आशीर्वचनको सुनकर प्रसन्न हुए और नगरके बाहर हो गये।

बरसातकी यमुना बड़े वेगके साथ बह रही थी। किन्तु बालकके पुण्यसे यमुनाने दो भागोंमें बहकर बीचमें उन्हें मार्ग दे दिया। यमुना पार कर अपने विश्वासपात्र

नन्दगोपके घर से आ रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि नन्दगोप सद्यःजात एक बालिका-को लिए हुए आ रहे हैं। वसुदेवने उनसे पूछा—'नन्द ? तुम इस बालिकाको कहाँ ले जा रहे हो ?' नन्दने कहा—'कुमार ! मेरी स्त्रीने देवी-देवताओंकी बड़ी मनौती मनाई थी कि सन्तान हो जाय। किन्तु जब यह मृत कन्या हुई तो उसने कहा कि 'इसे ले जाओ' मुझे नहीं चाहिए। उन्हीं देवताओंको दे आओ।' अतः उन्हें देनेके लिए यह ले जा रहा हूँ।' वसुदेवने कन्या स्वयं ले ली और यह कहकर बालकको उसे दे दिया कि 'अपनी स्त्रीसे कहना कि देवताओंने तुम्हारी प्रार्थनाओंको सुनकर यह बालक दिया है और बालिका ले ली है।' इसके बाद वसुदेवने नन्दको सब वृत्तान्त सुनाकर कहा—'मित्र। यह रहस्य गुप्त रखना और इस बालककी रक्षा करना।' नन्द उस सुन्दर बालकको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे लेकर घर वापिस आ गया तथा बालकको पत्नीको दे दिया। पत्नी भी सुन्दर बालकको पाकर बहुत खुश हुई।

हरिवंश पुराणमें कृष्णके बाल्य जीवन, बढ़ते प्रभाव, नन्दगोपके यहाँ जाकर देवकीका पुत्रसे तथा यशोदासे मिलन, कृष्णका शस्त्र-विद्या शिक्षण, कृष्णकी शूर-वीरता, कृष्णद्वारा चाणूर और कंसका वध आदि प्रभावपूर्ण निरूपण उपलब्ध हैं।

कंसके हत हो जानेपर उग्रसेन (कंसके पिता) को कारागृहसे मुक्त कर दिया गया। बलभद्र और कृष्ण दोनों भाई वसुदेव, समुद्रविजय आदि अपने पूज्य जनों तथा परिजनोंसे मिलनेके लिए मथुरा आ गये। चिरवियुक्त, सुरक्षित, धीर-वीर अपने पुत्रको पाकर वसुदेव और देवकी आदि बहुत हर्षित हुए। उग्रसेनको मथुराके राज्य-सिंहासनपर पुनः प्रतिष्ठित किया। कंसकी मृत्युके उपरान्त उसकी पत्नी जीवद्यशा अपने पिता जरासंधके पास चली गयी।

यहाँ ध्यातव्य है कि कंसके शस्त्रागारमें सिंहवाहिनी नागशय्या, अजितंजय नामक धनुष और पांचजन्य नामक शंख ये तीन अद्भुत शस्त्र उत्पन्न हुए। वरुण नामक ज्योतिषीने कंसको बताया था कि 'राजन् ! जो व्यक्ति नागशय्यापर चढ़कर धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ा दे और पांचजन्य शंखको फूँक दे वही तुम्हारा शत्रु है।' ज्योतिषीकी इस बातसे कंसको बहुत चिन्ता हुई और उसने शत्रुका पता लगानेके लिए घोषणा की कि 'जो कोई यहाँ आकर नागशय्यापर चढ़कर एक हाथसे पांचजन्य शंख फूँकेगा और दूसरे हाथसे धनुषपर डोरी चढ़ा देगा, वह पराक्रमी माना जायेगा तथा उसको सम्मान सहित अपनी पुत्री दूँगा।' यह घोषणा सभी बड़े नगरोंमें करा दी गयी थी। अनेक देशोंके राजा मथुरा पहुँचे। राजगृहसे कंसका साला स्वर्भानु भी अपने पुत्र भानुके साथ वैभव व सेनासहित आ रहा था। मार्गमें वह व्रजके गोधावनके एक सरोवरके तटपर पड़ाव डालनेके लिए उद्यत हुआ। ग्वालोंने उसे बतलाया कि 'इस सरोवरमें भयंकर सर्पोंका निवास है। इस सरोवरसे कृष्णके अतिरिक्त कोई पानी नहीं ले सकता।' यह सुनकर स्वर्भानुने अपनी सेनाका पड़ाव अन्यत्र डाला और कृष्णको

अपने निकट बुलवाया। कृष्णके पराक्रमकी बातें सुनकर वह बड़ा प्रभावित हुआ और स्नेहवश अपने साथ मथुरापुरी ले गया।

सभी राजकुमार नागशय्यापर चढ़नेमें असफल रहे। किन्तु कृष्ण साधारण शय्याके समान उस नागशय्यापर चढ़ गये, जिसके ऊपर भयंकर सर्पोंके फण लहरा रहे थे। एक हाथसे अजितंजय धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाकर दूसरे हाथसे शंखको पकड़कर फूंका। इसके बाद स्वभानुका संकेत पाकर कृष्ण वहाँसे चले गये। अब नन्दगोपको पता चला कि यह असाध्य कार्य मेरे पुत्रने किया तो वे स्त्री-पुत्र और गायोंको लेकर कंसके भयसे दूर गुप्त स्थानके लिए चले गये। यद्यपि कंसको ज्ञात हो गया था कि यह कार्य कृष्णने किया। फिर भी उसने नन्दगोपके पुत्र और समस्त गोपोंको मल्लयुद्ध करनेके लिए ललकारते हुए आदेश दिया।

वसुदेवने कंसका दुष्ट अभिप्राय ज्ञात कर शौर्यपुरसे समुद्रविजय और अपने आठों भाइयोंको मथुरा बुलाया तथा घोषणा की कि वे उनसे मिलने आये हैं। कंसने आश्वस्त होकर उनका स्वागत किया और उन्हें उत्तम महलोंमें ठहरा दिया।

बलभद्र कृष्णको लेकर स्नान करनेके लिए यमुना नदी पर ले गये और वहाँ कृष्णको जन्मसे लेकर कंसके दुरभिप्रायको उन्होंने बताया। देवकीके तथाकथित पुत्रोंकी हत्या, समयसे पूर्व उनका जन्म और छिपाकर नन्दगोपके घर उनका पालन-पोषण होने आदिके सब वृत्त सुनाये। कृष्ण अपने वास्तविक वंश, माता-पिता, परिवार और दुष्ट कंसका दुरभिप्राय ज्ञात कर प्रसन्न हुए।

कंसकी योजनानुसार कृष्णका मल्लोंके साथ युद्ध हुआ। युद्धमें कृष्णने सब मल्लोंको पराजित कर दिया। अन्तमें कंसको भी पछाड़ कर मार डाला। कंसके मरते ही उसकी सेना तितर-बितर हो गयी। कृष्णके सामने उसने अपने हथियार डाल दिये।

इसके बाद कृष्ण और बलभद्र अपने माता-पिताके घर पहुँचे और मिले। सभी प्रसन्न हुए। महाराज समुद्रविजय और उनके आठों भाई पहले ही मथुरा पहुँच चुके थे। वसुदेव, समुद्रविजय आदि गुरुजनोंने उन्हें आशीर्वाद दिया। महाराज उग्रसेन (कंसके पिता) को कृष्णने कारागारसे मुक्तकर मथुराके सिंहासनपर आसीन किया। कंसकी विधवा पत्नी जीवद्यशा अपने पिता जरासंधके यहाँ राजगृह चली गयी। जरासंधको अपने दामादका कृष्ण द्वारा वध ज्ञातकर बहुत क्रोध आया और अपनी सेना लेकर मथुरा पहुँचा। कृष्ण और यादवोंका जरासंधके साथ घमासान युद्ध हुआ। युद्धमें कृष्णने जरासंधको भी मार गिराया।

इसके उपरान्त रथनूपुरके महाराजा सुकेतुने अपनी सुलक्षणा पुत्री सत्यभामाका विवाह कृष्णके साथ और उसके भाई रतिमालने अपनी पुत्री रेवतीका विवाह बलभद्रके

साथ बड़े समारोहके साथ कर दिया। इसके अनन्तर कृष्ण और सभी यादवगण मथुरासे शौर्यपुर चले आये और सुखपूर्वक रहने लगे।

अरिष्टनेमिका जन्म :

महाराजा समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी शौर्यपुरमें बड़े आनन्दके साथ समय बिताने लगे। समस्त यादवगण भी अपनी शूर-वीरता और पराक्रममें प्रवृत्त थे।

एक दिन शिवादेवीने रात्रिके पिछले प्रहरमें १६ शुभ स्वप्न देखे। प्रातः उठकर शिवादेवी बड़े हर्षके साथ पतिके पास पहुँचीं और उनसे अपने स्वप्नोंका फल पूछा। समुद्रविजयने हर्षित होकर स्वप्नोंका फल बताते हुए कहा—'देवि! तुम्हारे त्रिलोक-पूज्य तीर्थंकर पुत्र होगा।' नौ माह पूरे होनेपर वैशाख शुक्ला १३ को शुभ मुहूर्तमें शिवादेवीने तीर्थंकर पुत्रको जन्म दिया और उसका नाम अरिष्टनेमि रखा गया। राज्यमें सर्वत्र पुत्र-जन्मोत्सव मनाया गया। इन्द्रों और देवोंने भी तीर्थंकरका जन्म-महोत्सव मनाया। सौधर्मेन्द्र सहित असंख्य देवोंने सुमेरु पर्वतपर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया और जन्मकल्याणक मनाया। नेमि धीरे-धीरे कुमार अवस्थाको प्राप्त हुए।

यादवों द्वारा शौर्यपुरका त्याग :

यादवगणने जरासन्ध और कंसका वध हो जानेके बाद सुरक्षाकी दृष्टिसे पश्चिम दिशाकी ओर जानेका निश्चय किया। देवों द्वारा रची द्वारिका नगरीमें पहुँचे। यह नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी तथा वज्रमय कोटसे युक्त थी। समुद्र उसकी परिखाका काम करता था। नगरीके बीचों-बीच समुद्रविजय आदि दसों भाइयोंके महल थे और उनके बीचमें कृष्णका अठारह खण्डोंवाला सर्वतोभद्र प्रासाद था। इस प्रासादके निकट अन्तःपुर और पुत्रों आदिके योग्य महलोंकी पंक्तियाँ बनी हुई थी। उग्रसेन आदि राजाओंके महल आठ-आठ खण्डके थे।

यादवोंके संघने समुद्रके तटपर श्रीकृष्ण और बलभद्रका अभिषेक करके उनकी जय-जयकार की। समस्त यादवगण आनन्दके साथ द्वारिकामें रहने लगे। धीरे-धीरे श्रीकृष्णका प्रभाव चारों ओर फैलने लगा। इससे पश्चिमके सभी नरेश उनकी आज्ञा मानने लगे।

नारदका आगमन और कृष्णके साथ रुक्मिणीका विवाह :

एक समय यादवोंकी सभा हो रही थी। उसी समय नारदने आकर नेमिप्रभु, कृष्ण और बलरामको नमस्कार किया और आसन ग्रहण करके उनसे इधर-उधरकी चर्चा की। नारद स्वाभिमानी, ब्रह्मचारी और अणुव्रती होते हैं, किन्तु वे अभिमानी होते हैं। जब वे उठकर कृष्णके अन्तःपुरमें पहुँचे तो उनकी पट्टरानी महादेवी शृंगाररत होनेसे उन्हें नहीं देख सकी और न उन्हें नमस्कार कर सकी। उन्होंने निश्चय किया कि कुण्डिनपुरके नरेश भीष्मकी राजकुमारी रुक्मिणीके साथ कृष्णका

विवाह होने और उसे पट्टरानी बना लेनेपर इस गर्विणी सत्यभामाका मद चूर हो जावेगा, तदनुसार रुक्मिणीका कृष्णके साथ विवाह हो गया और वह पट्टरानी बन गयी। रुक्मिणीका भाई रुक्मी अपनी बहनको अपने सखा शिशुपालको देना चाहता था। किन्तु ज्यों ही यह बात कृष्णको मालूम हुई तो कृष्ण रुक्मिणीको हरण कर ले गया। उधरसे रुक्मिणीका भाई रुक्मी और शिशुपाल भी अपनी सेनाएँ लिये आ गये। दोनों ओरसे घमासान युद्ध हुआ। कृष्णने शिशुपालका एक ही बाणसे मस्तक काट डाला और उधर बलरामने रुक्मीको पराजित किया। दोनों भाई युद्धमें विजयी होकर वहाँसे चल दिये। रैवतक पर्वतपर पहुँचकर कृष्णने विधिपूर्वक रुक्मिणीके साथ विवाह किया।

प्रद्युम्नका जन्म और हरण :

सत्यभामाको जब यह ज्ञात हुआ तो वह सापत्न्य डाहसे जलने लगी। कालान्तरमें रुक्मिणीके पुत्रका जन्म हुआ और उसका नाम प्रद्युम्न रखा गया। पूर्वभवका बैरी असुर आकाशमार्गसे विमान द्वारा जा रहा था। उसने विभंगावधिसे ज्ञात किया कि 'यह (प्रद्युम्न) मेरे पूर्वभवका शत्रु है' और उसे प्रच्छन्न वेषमें उठा ले गया। जहाँ राज-महलमें आनन्द छाया हुआ था, वहीं अब प्रद्युम्नके अपहरणसे विषाद छा गया। इसके पश्चात् नारदजी प्रद्युम्नका पता लगानेके लिए देश, देशान्तरका पर्यटन करते हुए सीमन्धर स्वामीके समवसरणमें पहुँचे। उनसे मालूम हुआ कि प्रद्युम्न १६ वर्षोंके बाद १६ वस्तुओंका लाभ तथा प्रज्ञप्ति विद्याका लाभ करके सकुशल कृष्णके पास पहुँच जावेगा। फलतः प्रद्युम्न समयपर पहुँच गये, जिससे सबको बड़ा आनन्द हुआ। जैन पुराणोंमें प्रद्युम्नका चरित बहुत प्रभावपूर्ण वर्णित है।

महभारत युद्धका वर्णन भी विस्तारसे जैन लेखकोंने किया है। वह वहींसे ज्ञातव्य है।

नेमिनाथका शौर्य प्रदर्शन :

एक दिन यादवोंकी सभा चल रही थी। प्रश्न उठा कि इस समय सबसे अधिक बलवान् कौन है? किसीने पाण्डवोंका नाम लिया, किसीने श्रीकृष्णका, किसीने बलरामका, किन्तु अन्तमें अधिकांश राजा और बलदेवने कहा कि भगवान् नेमिनाथके समान तीनों लोकोंमें अन्य कोई पुरुष बलशाली नहीं है। ये अपनी हथेलीसे पृथिवीको उठा सकते हैं, समुद्रोंको दिशाओंमें फेंक सकते हैं, सुमेरु पर्वतको कम्पायमान कर सकते हैं। ये तीर्थंकर हैं। इनसे उत्कृष्ट दूसरा कौन हो सकता है? बलदेवके ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण मुस्करा कर बोले—'अनुज! नेमि! यदि आपके बाहुओंमें बल हो तो क्यों नहीं बाहु-युद्ध कर लिया जाय।' अरिष्टनेमिने हँसते हुए कहा—'अग्रज! बाहु-युद्धकी क्या आवश्यकता है? मेरे बाहुबलकी ही परीक्षा करना है तो इस आसनसे मेरा पैर

ही विचलित कर दीजिए ।' श्रीकृष्णने बहुत जोर लगाया, किन्तु पैरकी बात तो दूर रही, उसकी एक उँगली भी नहीं विचलित कर सके । अन्तमें हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण बोले—'भगवन् ! आपका बल लोकोत्तर है ।' किन्तु इससे उनके मनमें यह शंका बैठ गयी कि अरिष्टनेमिका बल अपार है । इनके रहते मेरा राज्यशासन नहीं चल सकेगा ।

एक घटना और घटी । नेमिनाथने अपना गीला वस्त्र निचोड़नेके लिए कृष्णकी महारानी जाम्बतीको दिया । जाम्बती अभिमानके साथ बोली—'कौस्तुभमणि धारणा करने वाले, नागशय्यापर आरूढ़ होकर शंखकी ध्वनिसे तीनों लोकोंको कंपाने वाले, शार्ङ्ग धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाने वाले, राजाओंके भी महाराज श्रीकृष्ण (मेरे पति) भी मुझे ऐसी आज्ञा नहीं देते, किन्तु आश्चर्य है, कि आप मुझे अपने गीले कपड़े निचोड़नेकी आज्ञा दे रहे हैं । किन्तु अरिष्टनेमिने मुस्कराते हुए कहा—'वैसा शौर्य क्या कठिन है ।' और राजमहलमें पहुँच कर नागोंके फणोंसे मण्डित नागशय्यापर चढ़ गये तथा शार्ङ्ग धनुषको झुकाकर उसकी प्रत्यंचा चढ़ा दी । साथ ही पाञ्चजन्य शंखको इतने जोरसे फूँका कि उसकी ध्वनिसे सारा आकाशमण्डल और पृथिवी व्याप्त हो गयी । श्रीकृष्णने जब शंखकी ध्वनि सुनी और कुमार नेमिनाथको नागशय्यापर अनादरपूर्वक खड़ा देखा तो उन्हें आश्चर्यका पार नहीं रहा । उनका मन कुशंकाओंसे भर गया ।

नेमिनाथके विवाहका आयोजन :

श्रीकृष्ण जानते थे कि नेमिनाथ बचपनसे उदासीनवृत्तिके महापुरुष हैं । ऐसा प्रयत्न किया जाय कि नेमिनाथ संसारसे विरक्त हो जायें और हम निष्कंटक एकछत्र राज्य करें । अतएव भोजवंशी राजा उग्रसेनकी पुत्री राजीमतीको कुमार नेमिनाथके लिए श्रीकृष्णने उनसे याचना की ।

श्रावणका मास था । बारात सजधजके साथ जूनागढ़ पहुँची । बारातमें अनेकों नरेश भी अपने वैभवके साथ सम्मिलित हुए । बारात जब जूनागढ़के उद्यानके निकट पहुँची तो कुमार नेमिनाथने एक बाड़ेमें घिरे पशुओंको देखा । रथके सारथीसे उन्हें मालूम हुआ कि ये पशु मारे जायेंगे और बारातमें सम्मिलित राजाओंको उनके मांससे सत्कृत किया जावेगा । नेमिनाथ रथसे उतर गये और ऊर्जयन्त गिरिपर चढ़ गये तथा दिगम्बर दीक्षा लेकर तपश्चर्यामें मग्न हो गये ।

इधर सारे जूनागढ़में यह समाचार फैल गया । आनन्दके स्थानमें सर्वत्र शोक छा गया । राजुलको जब यह ज्ञात हुआ तो वह भी उनके पीछे-पीछे ऊर्जयन्तगिरि पर चढ़ गयी । उसने भी आर्यिका (साध्वी) दीक्षा ले ली । यद्यपि माता-पिता और परिजनोंने उसे बहुत समझाया । किसी अन्य राजकुमारके साथ विवाह कर देनेके लिए भी कहा । किन्तु उसने यही कहा कि 'भारतीय नारी अपने पतिका एक ही बार वरण करती है । मैं भी उन्हींका अनुगमन करूँगी । वे ही मेरे सर्वस्व हैं ।' फलतः राजीमतीने भी अरिष्टनेमिका ही

मार्ग अपनाया। तप और त्यागके कठिन मार्गपर चलने वाला इस प्रकारका जोड़ा विश्व भरमें भी नहीं मिलेगा।

कठोर तपके द्वारा कर्मबन्धनको तोड़कर भगवान् नेमिनाथने कैवल्य प्राप्त किया और सौराष्ट्र, लाट, पांचाल, शूरसेन, कुरुजांगल, कुशाग्र, मगध, अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग आदि देशोंमें विहार करके धर्मोपदेश दिया।

अरिष्टनेमिके समवसरण (धर्म-सभा) में वरदत्त आदि ११ गणधर, ४०० पूर्वधारी, ११८०० उपाध्याय, १५०० अवधिज्ञानी, १५०० केवलज्ञानी, ९०० विपुलमतिमनः-पर्ययज्ञानी, ८०० वादी और ११०० विक्रियाऋद्धिधारी मुनि थे। राजीमति आदि ४०००० अर्जिकाएँ थीं। १६९००० श्रावक और ३३६००० श्राविकाएँ थीं।

विहार करते हुए जब तीर्थंकर अरिष्टनेमि पुनः द्वारका पधारे और रैवतक पर्वतपर विराजमान हो गये तो वसुदेव, बलदेव और श्रीकृष्ण परिजनों और पुरजनोंके साथ उनके दर्शनोंके लिए उनके पास पहुँचे। धर्मकथा सुननेके बाद बलदेवने भगवान्से पूछा—'भगवन्! यह सुन्दर नगरी द्वारिका क्या हमेशा इसी प्रकार अवस्थित रहेगी? कृष्णकी मृत्यु किस निमित्तसे होगी? मेरा चित्त कृष्णके स्नेहपाशमें बंधा हुआ है, क्या ऐसी स्थितिमें मैं कभी संयम ग्रहण कर सकूँगा? प्रभो! मेरी जिज्ञासा शान्त करें।'

त्रिकालज्ञ भगवान् अरिष्टनेमिने बलरामके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहा—'बलराम! यह द्वारकापुरी आजसे १२ वर्ष बाद मद्यपान करनेवाले यादवोंकी उद्दण्डताके कारण द्वीपायन मुनिको क्रोध आनेपर उनके निमित्तसे भस्म हो जायगी। श्रीकृष्णकी मृत्यु कौशाम्बीके वनमें जरत्कुमारके बाणसे होगी। उसी समय श्रीकृष्णकी मृत्युका निमित्त पाकर तुम्हें वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा। तुम घोर तप करके ब्रह्म स्वर्गमें उत्पन्न होगे।'

भविष्यवाणी सही निकली :

जिस समय तीर्थंकर अरिष्टनेमिने अपनी दिव्यध्वनिमें उक्त भविष्यवाणी की उस समय बलरामके मामा द्वैपायनकुमार भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने जब यह सुना तो संसारसे विरक्त होकर मुनि हो गये और अप्रिय प्रसंगको टालनेके लिए अन्यत्र चले गये। जरत्कुमार भी अज्ञात स्थानको चले गये। जरत्कुमार श्रीकृष्णके लघु भ्राता ही थे।

बलराम और श्रीकृष्णने सारे नगरमें मद्य-निषेधका आदेश करा दिया और मद्यको वनोंमें अज्ञात स्थानोंपर फिकवा दिया। तीर्थंकर नेमिनाथ वहाँसे विहार कर गये। भवितव्य टलता नहीं। यादव कुमार वनक्रीड़ाके लिए एक दिन वनमें गये हुए थे। वहाँ प्यास लगनेपर गड्ढोंमें भरी शराबको पानी समझकर पी लिया। उसके पीते ही वे सबके सब उन्मत्त हो गये और परस्परमें लड़ते हुए वे वहाँ पहुँच गये जहाँ द्वीपायन-

कुमार मुनि ध्यानमें मग्न थे। यादवकुमारोंने उनपर भी हमला कर दिया। वे ध्यानसे च्युत हो गये और क्रुद्ध होकर उन्होंने द्वारकाको भस्म कर दिया। सिर्फ श्रीकृष्ण और बलराम ही बचे।

दोनों भाई परिवारके वियोग और वैभवपूर्ण द्वारकापुरीके भस्म हो जानेसे शोकाभिभूत होते हुए; कौशाम्बीके भयानक वनमें पहुँचे। एक स्थानपर पहुँचकर श्रीकृष्ण प्याससे पीड़ित हो वृक्षके नीचे बैठ गये और ज्येष्ठभ्राता बलरामसे जल लानेके लिए कहा। बलराम जल लेनेके लिए गये ही थे कि जरत्कुमारने दूरसे वायुसे श्री कृष्णके हिलते हुए वस्त्रको हिरणका कान समझा और मृगके शिकारके धोखेसे उनपर बाण चला दिया। बाण सनसनाता हुआ उनके पैरमें बिंध गया। कृष्ण तुरन्त बोले—'किस वैरीने अकारण ही मेरे पैरको वेधा है?' जरत्कुमारने दूरसे ही छिपे-छिपे कहा—'मैं हरिवंशमें उत्पन्न वसुदेव नरेशका पुत्र जरत्कुमार हूँ और भगवान् नेमिनाथकी भविष्य-वाणी सुनकर वनमें रहता हूँ—मेरे द्वारा मेरे अग्रज श्री कृष्णकी मृत्यु न हो।' श्रीकृष्णने जरत्कुमारको अपने पास बुलाया। जब उसे मालूम हुआ कि ये तो मेरे ही अग्रज हैं, जिनकी मृत्युको बचानेके लिए वनमें रहता था। सच है, होनहार टलती नहीं है। तीर्थंकरके वचन अन्यथा नहीं हो सकते। जरत्कुमार बहुत शोकाकुल हुआ। जब बलराम पानी लेकर पहुँचे तो कृष्णको सोया हुआ समझा, जबकि कृष्ण मृत हो चुके थे। बलरामका कृष्णके प्रति इतना मोह था कि वे उन्हें छह माह तक कन्धेपर लिए इधर-से-उधर और उधर-से-इधर भटकते रहे। किसी तरह उनका मोह दूर हुआ। जरत्कुमार और पाण्डवोंकी सहायतासे बलरामने श्रीकृष्णका तुङ्गीगिरपर दाहसंस्कार किया तथा जरत्कुमारको राज्य देकर बलरामने भगवान् नेमिनाथसे वहीं दिगम्बरी दीक्षा ले ली। सौ वर्ष तक कठोर तप किया। अन्तमें समाधिमरणपूर्वक शरीर त्याग कर ब्रह्मलोक नामके पाँचवें स्वर्गमें इन्द्र हुए।

पाण्डवों द्वारा दीक्षाग्रहण :

पांचों पाण्डवोंने भी भगवान् नेमिनाथसे मुनिदीक्षा ले ली। कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, आदि रानियोंने राजीमती गणिनीसे आर्यिकाकी दीक्षा ली। पांचों पाण्डव जब शत्रुंजय पर्वतपर ध्यानमें मग्न थे, तब दुर्योधनका भानजा घूमता-फिरता उधरसे आ निकला। पाण्डवोंको देखकर उसे क्रोध उत्पन्न हो गया। उसने उनपर बड़े उपसर्ग किये। गर्म लोहेके आभूषण उन्हें पहनाये। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन मुनिराज इन उपसर्गोंको सहनकर कर्मोंका क्षयकर निर्वाणको प्राप्त हुए और नकुल तथा सहदेव मुनिराज सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए।

अरिष्टनेमिका निर्वाण-लाभ :

भगवान् अरिष्टनेमि उपदेश देते हुए उत्तरापथसे पश्चिमकी ओर सौराष्ट्र देशमें स्थित ऊर्जयन्त गिरि (गिरनार पर्वत) पर पहुँचे और योगनिरोध करके अघातिया कर्मों-

को भी नाश करते हुए आषाढ़ कृष्णा अष्टमीको प्रदोष कालमें निर्वाणको प्राप्त हुए। उनके साथ ५३६ मुनियोंने भी मुक्ति प्राप्त की। उनके तीर्थमें ८००० मुनि मोक्ष गये हैं। यादवोंमें समुद्रविजय आदि नौ भाई, शंबु, प्रद्युम्न कुमार आदि मुनि भी गिरनार पर्वतसे मोक्ष गये हैं। इसीलिए जैन परम्परामें गिरनार पर्वत बहुत पावन जैन तीर्थक्षेत्र माना गया है। प्रति वर्ष लाखों भक्त इस तीर्थक्षेत्रकी वन्दना करनेके लिए आते हैं।

प्रस्तुत 'द्वापरका देवता : अरिष्ट नेमि' में लेखकने नेमि और राजुलकी उपर्युक्त मर्मस्पर्शी कथाको अंकित करनेका प्रयत्न किया है। इस प्रयत्नमें कविने राजुलकी प्रणय-व्यथा और त्यागको बड़े ही सशक्त ढंगसे उभारा है।[1]



१. पण्डित बलभद्र जैन, जैनधर्मका प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, तीर्थंकरचरितावली, मैसर्स केशरीचन्द्र श्रीचन्द्र चावलवाले, नया बाजार, दिल्ली—६; वीर, निर्वाणसं० २५००, ई० १९७३ से साभार लिया।—प्रकाशक।

दो शब्द

मानवीय प्रज्ञा अनन्तकालसे मानवमनके रहस्योंकी खोजमें लगी हुई है। प्राणिमात्र चेतन और अचेतनकी संयोगी अवस्था है। आत्मा-अनात्मा, सत्य-असत्य, चेतन-अचेतन, नश्वर-अनश्वर जैसे विरोधी आयाम उसकी दृष्टिमें रहे हैं। अनादिकालसे ही श्रमणों, ऋषियों, मुनियोंने संसारसे विरक्त होकर इस जिज्ञासाके प्रति सम्पूर्ण भौतिक सुखोंको समर्पित करके इनके सन्दर्भमें चिन्तनको साधनका लक्ष्य बनाया है। इन रहस्योंको अनावृत करनेके साथ-साथ मुक्ति उनका एकमात्र लक्ष्य रहा है। मोक्ष एक उपलब्धि है, आत्माकी अनुभूति है, इसलिये उसे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। द्वापरकालीन श्रीकृष्णके चचेरे भाई, नृप समुद्रविजयके पुत्र नेमिनाथ, जिन्हें अरिष्टनेमिके नामसे भी स्मरण किया जाता है, श्रमणसंस्कृतिमें अरिष्टनेमि अरिहन्त एवं तीर्थंकरोंके क्रममें बाईसवें तीर्थंकरपदसे विभूषित हैं। तीर्थंकर अरिष्टनेमिका जीवन-अभिधान इस प्रबंधकाव्यकी विषयवस्तु है, जो अत्यन्त संक्षिप्त, किन्तु प्रणय-प्रव्रज्याकी अनुपम कथा है, मानवीय संवेदनाओंकी धरोहर है। अरिष्टनेमि द्वारिकासे जूनागढ़ राजुलको ब्याहने जाते हैं। बारात जब जूनागढ़के दुर्गद्वार-की ओर जा रही थी। नेमिनाथ एक स्थानपर एकत्रित पशुओंको देखकर सारथिसे पूछते हैं—"ये कोलाहल-क्रन्दन कैसा है? इतने पशु क्यों एकत्रित किये गये हैं।" सारथिने उत्तर दिया—"आपके पाणिग्रहणके उपलक्ष्यमे आयोजित प्रीतिभोजमें इन पशुओंका मांस पकाया जायेगा।" अरिष्टनेमि करुणासे विह्वल हो उठते हैं और कहते हैं—"एक विवाहके निमित्त इतने पशुओंकी हत्या"। और तत्क्षण संसारसे विरक्त होकर ऊर्जयन्त पर्वतपर चले जाते हैं। उनकी विरहव्याकुल वाग्दत्ता राजुल पहले तो अरिष्टनेमिको संसारमार्गपर लानेकी भावना रखती है, किन्तु अरिष्टनेमिकी श्रमणके रूपमें साधना देखकर उनके पक्षका अनुसरण करती है। स्वयं अरिष्टनेमि उन्हें साध्वी पदकी दीक्षा देते हैं।

इस कथाको बाल्यकालसे ही सुना है। स्मृतियोंमें अब भी कुछ पंक्तियाँ गूंजती रहती हैं।

मोह तजा ममता तजी।
उनने तजो है सकल परिवार जी॥
अबव्याही राजुल तजी।
वे तो जाय चढ़े गिरनार जी॥

श्रमण-साहित्यमें कहाकाव्यों, गीतों, लोकगीतों, पुराणकाव्यों एवं साहित्यकी अधिक-तम विधाओंमें तीर्थंकर नेमिनाथपर विपुल साहित्य उपलब्ध है किन्तु वह वर्तमान भाषा-शैलीकी अभिव्यक्तिके दृष्टिकोणसे जुड़ा हुआ प्रतीत नहीं होता। अरिष्टनेमिकी कथा द्वापरकालीन होकर भी वर्तमान परिप्रेक्ष्यमे अत्यधिक मूल्यवान् है। वर्तमान युग अस्त्र-शस्त्रोंकी अन्धी प्रतिस्पर्धामे लगा हुआ है। विश्वके शीर्षस्थ वैज्ञानिकोंका मत है कि विश्वमें परमाणु-अस्त्र-शस्त्रोंका इतना निर्माण हो चुका है कि उसका एक अंश भी सृष्टिको मानव-विहीन करने हेतु पर्याप्त है। अरिष्टनेमिके जीवनकी प्रमुख घटनाएँ कुरुक्षेत्र के युद्धोपरान्तकी है, इसलिये, युद्ध, युद्धके परिणामके सन्दर्भ, युगानुकूलकी अभिव्यक्ति मूल कथासे जुड़े रहकर भी की जा सकती है।

यदि युद्धो का क्रम यही रहा
तो एक दिवस वह आयेगा,
इतिवृत्त यहाँ अंकित करने,
कोई न शेष रह जायेगा।

युद्धोपरान्त,

वसुधाके वक्षस्थल में
अनगिन व्रण दिखते,
सिन्दूर मंजूषाएँ
पण्य-वीथिका पर,
खोजे पर भी
उनके न अब ग्राहक मिलते।

सुकोमल नारी-भावनाएँ नारी-मनकी धरोहर हैं। राजुल अरिष्टनेमिकी प्रव्रज्यो-परान्त उन्हें पानेके प्रति आशावती है।

दृग बन्द किये निज पलकों में
मकरन्द लिये बैठे होंगे,
जिनसे जीवनका रस झरता
मृदु छन्द लिये बैठे होंगे।

पर श्रमण अरिष्टनेमिकी साधना देखकर राजुल उनके जीवन-पक्षको अपनी सुकोमल भावनाएँ समर्पित कर नारी-चरित्रको गौरव प्रदान करती है।

कल्पांत अवधिसे मैं उनके
जीवन आगंनकी भोर किरण,
हम साथ-साथ कई जन्मोंसे
संयोग तोड़ता रहा मरण।

इस बार मरणकी छाती पर
इच्छित रखना है चरण तुम्हें
मेरी चिर पगली पीड़ाको
तेरे चरणों में मिले शरण।

इस प्रकार मानवीय संवेदनाओंके चिन्तनके विभिन्न आयामोंको स्पर्श करनेका प्रयत्न किया है। काव्यकथाके वर्णनात्मक स्थलोंकी अपेक्षा अनुभूतिपरक स्थलोंके प्रति ही मेरा अधिक आकर्षण रहा है।

इस प्रबन्धकाव्यके माध्यमसे अपने आराध्यका स्मरण कर तूलिका पवित्र हुई है। आराध्य श्रीचरणोंमें काव्यकृतिको समर्पित कर प्रसन्नता और गौरवका अनुभव करता हूँ। साहित्य-मनीषियों एवं पाठकोंने यदि इस काव्यकृतिका स्वागत किया तो अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

श्रमण-साहित्यके मनीषी डॉ० दरबारीलाल कोठिया एवं वैदिक-साहित्यके विद्वान् डॉ० गंगासहाय प्रेमीके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनकी आत्मीयताके कारण कृति वर्तमान रूपमें प्रकाशित हो रही है।

पृथ्वीराजमार्ग
गुना (म० प्र०)
दिनाक २६।११।८३।

मिश्रीलाल जैन

विषयानुक्रमणिका

सप्तम सर्ग

अष्टम सर्ग



प्रथम सर्ग

नमन

दो नेमिनाथ ! आशीष, प्रणत
श्रद्धा से तूलि उठाता हूँ,
नश्वर स्वर में हे अविनश्वर !
मैं गीत तुम्हारे गाता हूँ।
इतिहास तुम्हारा अमर शिल्प
है करुणा का आलेख अमर,
अन्तर्द्वन्द्वों का कीर्तिमान
आन्तरिक शत्रु से किया समर।

आकर्षण और विकर्षण की
यह अनुपम अद्भुत दिव्य कथा,
राजुल के अश्रु-समर्पण की
अंकित है इसमें दिव्य व्यथा।
शोणित से भींगी हुई धरा
पर तुमने नव इतिहास लिखा,
हिंसा-तम मध्य अहिंसा की
प्रज्वलित कर गये दीप-शिखा।

•

युद्ध और विध्वंस

किसी युग में युद्ध के
निर्मम चरण रुकते नहीं हैं।
पार करलें युगों की दूरी
कभी थकते नहीं हैं।
फिर धरा को रकत से
अभिषिक्त करने आ रहा हूँ।
शांति का सूरज क्षितिज में
अस्त करने आ रहा हूँ।

संस्कृति का मधुर कलरव
मौन होता जा रहा है,
बिना कुछ आहट किये
विध्वंस हँसता आ रहा है।
परिग्रह से लिप्त सब सम्बंध
खूंटी पर टँगे हैं।
नाश के अंकुर घटा पर
रुक नहीं पाये, उगे हैं।

ध्वंस हूँ मैं, नित मनुज की
बुद्धि को देता चुनौती,
तृप्ति मिलती उन क्षणों में
जब मनुजता मूक होती।
अहम् के रथ पर चढ़ा हूँ
द्वेष, मत्सर साथ मेरे,
आगमन पर शांत हैं ये
शांति के स्वर्णिम सबेरे।

कीट जैसे काष्ठ के
अस्तित्व का ही नाश करता,
बोध होता कीट का जब
काष्ठ में से घुन निकलता।
दैत्य हूँ मैं नाश करने
मनुज को बहका रहा हूँ,
नाश की वीणा,
मरण के गीत की धुन गा रहा हूँ।

शांति के अन्वेषियों को मैं
चिरन्तन हूँ पहेली
युद्ध की उलझी समस्या
है सदा मेरी सहेली
ज्ञान, चिन्तन, बुद्धि, प्रज्ञा
पराजित हैं सदा मुझसे,
संस्कृति और सभ्यता का
है विकल इतिहास जिससे।

जय-पराजय का नहीं
इतिहास मेरे पास कोई,
अधर किसके हँसे ?
किसने आँख आँसू से भिगोई ?
चीत्कारों औ विलापों में
अमित सुख मानता हूँ,
मानवी संवेदनाओं को
नही पहिचानता हूँ।

ध्वंस हूँ मैं, मरण हूँ मैं,
मनुज यह कब जान पाया ?
किस दिशा में निलय मेरा
कौन कर अनुमान पाया ?
ध्वंस से होकर विमुख
जन मुक्ति को पाले भले ही

युद्ध की उलझी समस्या
है सदा मेरी सहेली।

आदि युग से रूप मेरा
संवरता ही जा रहा है,
खड्ग से संग्राम का युग
आज बीता जा रहा है
अस्त्र-शस्त्र नवीनतम
आग्नेय बनते जारहे हैं,
मनुज के हाथों मनुज के
नाश के दिन आरहे हैं।

नाश हूँ निर्माण के दो पल
नहीं मुझको सुहाते
संस्कृतियों के नवांकुर
देख मेरे प्राण जाते।
समर्पण संस्कारका मृदु
तंतु मुझको तोड़ना है।
नाश हूँ, निर्माण को भी
उसी पथ पर मोड़ना है।

आदि युग की ऋचाओं में
लिखा है इतिहास मेरा,
वक्ष तम का चीरकर ही
जन्म लेता है सबेरा।
वरुण, पूषा, इन्द्र से
या अग्नि से कीं प्रार्थनाएँ,
आज भी है साक्षी
ऋग्वेद की पावन ऋचाएँ

सूर्य को दे अर्घ्य
संध्या में रचाईं प्रार्थनाएँ
लोक-मंगल के लिये
गढ़नी पड़ी अनगिन ऋचाएँ।

सोमरस का पान करें
समवेत स्वर में गान गाये,
'शांति का सूरज क्षितिज में
नित्य रह किरणें लुटाये।'

आदि युग के कल्पवृक्षों
का विकृत अवशेष हूँ मैं,
तमस्तापित, दुःखी चिन्तित
मनुजता का क्लेश हूँ मैं।
आदि मनु के नयन में
मैं अश्रु बनकर डबडबाया
उन क्षणों से भूमि पर
मुझको न कोई रोक पाया।

घृणा, द्वेष, विनाश, मत्सर
ये सभी हैं रूप मेरे,
आदि से है, अन्त तक ये
रहेंगे दुस्तर अँधेरे।
मैं कुटिल, निष्ठुर विनाशक,
पर मुझे जग प्यार करता,
रोपा निज हाथ से विष-बेल
पर किंचित न डरता।

राम का वन गमन, दशरथ
का निकलता प्राण हूँ मैं,
मनुजता जिसके तले रोती
वही पदत्राण हूँ मैं।
स्वर्णमृग बन, मैं बना था
राम प्रज्ञा को चुनौती,
हंस विह्वल भटकता वन-वन
गया ले काग मोती।

द्रौपदी की श्याम वेणी के
अभी हैं केश खोले,

कर्ण की गाथा अभी तक
मौन थी, पर कृष्ण बोले।
अहम् के रथ पर सुयोधन
बैठ कर इतरा रहा है,
दृष्टि में आता नहीं, पर
युद्ध सिरपर आ रहा है।

मैं नहीं हूँ कल्पना,
मृदुहास या मादक सबेरा
कुछ दिवस का युद्ध सदियों
के लिए लाता अंधेरा।
पांडुसुत लौटे कुशल से
लाख के उस मृत्यु घर से,
विवश होकर उठा ली है
भयानक करवाल कर से।

कृष्ण दुर्योधन कुटिल को
निरन्तर समझा रहे हैं,
गृह-कलह से शक्ति होती
क्षीण, वे अकुला रहे हैं।
पांडवों का न्याय से जो
भी निकलता भाग, दे दो,
भाग यदि देना न चाहो
भाग का अनुभाग दे दो।

वह सुई की नोक सम
धरती न देना चाहता है,
हो सके तो पांडवों के
प्राण लेना चाहता है।
युगपुरुष, युगप्राण जैसे
पितामह हैं साथ उसके,
जरासंध, सुकर्ण जैसी
हैं भुजाएं पास किसके?

युद्ध से भयभीत होना
कापुरुष की क्या निशानी ?
आज द्वापर क्यों विवश है
रक्त से लिखने कहानी ?
नाश और निर्माण की
प्रतिद्वन्द्विता सदियों पुरानी,
कभी बनती है बृहद् इतिहास
नन्हीं सी कहानी।

अकिंचन सी एक उल्का
ज्वाल बन सदियों धधकती,
तभी बुझती जब हिमालय से
कभी गंगा निकलती।



कुरुक्षेत्र-युद्धोपरांत द्वापर

रणभेरी कुरुक्षेत्र की मौन हुई
इतिहास लिखा जाना है
उसका शेष अभी।
माटी गीली है अभी रक्त की धारा से
विस्मय मे डूबा हुआ है
आर्यावर्त अभी।

सुई की नोक बराबर भूमि
निज बन्धुओं को
देने न थे तैयार कभी
मृत्यु की गोदी मे अतीत की
चादर ओढ़े पड़े सभी।

युद्ध लड़ना कठिन,
विषम उसके परिणाम अधिक ही होते हैं।
खुशियाँ होती हैं निर्वासित युग से।
रोते है
आँसू और नये कुछ बोते है।

जनश्रुति में जीता न्याय,
कुनीति हारी है
पर इसकी कीमत पडी राष्ट्र को भारी है।
हर घर-आँगन में
रोप दिये दुःख के विरख,
उच्छ्‌वास जगे
खुशियाँ युग से भागी हैं।

जो हार गये ग्लानि, लज्जा से रोते हैं।
जो जीत गये, वह भी क्या सुख से सोते हैं?
सुयोधन का यदि वंश मिटा
पांडु-सन्तानों ने भी तो कुछ खोया है?
अर्जुन के नयनों से जाकर पूछो,
अभिमन्यु की यादों में कितना रोया है?

कुन्ती राजमाता के पद आसीन हुई
कुरुक्षेत्र-विजय पर
सबसे ज्यादा रोई है।
जब तक चलता था युद्ध
कभी सो लेती थी,
युद्ध बंद हुआ उस क्षणसे,
व्यथा से
अब तक क्या सो पाई है?

मातृत्व-मंजूषा से उसकी,
कितना प्रिय दुर्लभ रत्न गया?
इससे बढ़कर दुर्भाग्य
जननी का होगा क्या?
वह भी उसके हाथों से छला गया।
कुन्ती का नहीं, वीरता का,
वसुधा का दुर्लभ रत्न गया।
युग का शिव, दानी दधीचि गया।
माँ की ममता का भी
कैसा विचित्र उपहार मिला?
जिस क्षण उसको स्तन से
पीयूष मिलना था,
उस क्षण उसको जलधार मिली।

देवों ने छला,
मातृत्व ने पौरुष उसका निस्तेज किया।
उसको खोकर
कुरुक्षेत्र विजय के सूत्रधार
श्री कृष्ण स्वयम् पछताते हैं।
पांडवकुल में सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं।
पांडव जिससे प्रतिक्षण भयभीत रहे
उसके चरणों की धूलि शीश चढ़ाते हैं।

पौरुष से चढ़ा हिमालय पर,
कीर्ति के नव देवालय पर,

वह ममता पाकर पिघल गया।
सबके-मंगल हित बिखर गया।

युग ने क्या, खोया पाया ?
वसुधा से कौन गया, आया ?
अहिंसा उपेक्षित खड़ी हुई युग द्वारे पर
आँसू के पादप रोप दिये,
हर आँगन में।
ममता रोई, करुणा सिसकी चौराहे पर।

वसुधा के वक्षस्थल में
अनगिन व्रण दिखते,
सिन्दूर मंजूषाएं हैं पण्य-वीथिका पर,
खोजे पर भी उनके न अब ग्राहक मिलते।

प्रीति की तूली पत्र नही लिख पाती है,
राखी उदास हाथों से छूटी जाती है।
ममता के बाहुपाश नही बंध पाते हैं,
अपना वक्षस्थल भीच हाथ पछताते हैं।

सच पूछो तो युद्धस्थल में
कौरव क्या, पांडव हारे हैं।
जीता तो मात्र कृष्ण जीता
सुख-दु:ख में साथ निभाये जो,
ऋषि, मुनियों के मन भाये जो,
रख गया विश्व के हाथों में
ज्योतिर्मय, श्लोकमयी गीता।

वह युद्ध रचा
विघटित करता, सेनानी है,
हर युग की अमर कहानी है।
वह वर्तमान
श्रद्धा- भक्ति का वन्दन है,
हर आने वाले युग का वह
अभिनन्दन है।



द्वितीय सर्ग

श्रीकृष्ण और अरिष्टनेमि

पौरुष अजेय है, पर उसके
अन्तस् में करुणा पलती है,
जब कोई अर्थी उठती है
पीड़ा से आँख पिघलती है।
व्रण दिखते ही वह दिव्य पुरुष
पीड़ा से व्याकुल होता है,
कांटों के स्थल पर जाकर
वह बीज सुमन के बोता है॥

पर राजनीति के दर्पण का
वह बिम्ब नही पढ़ सकता है,
घर-बाहर का कोई बैरी
फिर-युद्ध बीज बो सकता है।
हिंसा के बिना मूर्ति जय की
क्या कभी गढ़ी जा सकती है ?
क्या कूटनीति के बिना
युद्ध-संहिता पढ़ी जा सकती है ?

निश्चित ही मुझे नापनी है
इस सागरतल की गहराई,
मैंने देखी है मात्र अभी
इसके पौरुष की परछाईं।



विरक्ति

मानव शोणित से सद्यः स्नात धरा है,
    व्रण सदियों बाद भरेगा अभी हरा है।
नरमेध हुआ, अब पशुधन पर संकट है,
    द्वापर की धरती रक्तसना पनघट है।

मानव मानव से कितना दूर हुआ है?
    शोणित का रिश्ता भी दस्तूर हुआ है।
द्वापर में लगता छल जैसे कौशल है,
    मानवता का अब शेष कौन सम्बल है?

अहिंसा को युग प्रतिमा गढ़नी होगी,
    सब को प्राणों की भाषा पढ़नी होगी।
स्नेह-प्रीति का दीप जलाना होगा,
    आस्था की नीव पर निलय बनाना होगा।

अब नहीं जायेंगे चरण प्रणय के पथ पर,
    भीतर जागा है अभी नया संवत्सर।
स्वस्तिक वसुधा पर अंकित करना होगा,
    इतिहास नया हाथो से गढ़ना होगा।

रथ ठहरा, नेमिनाथ जब रथ से उतरे,
    विस्मय के क्षण तब जन-समूह में बिखरे।
वस्त्राभूषण काया से सभी उतारे,
    वसुधा ने पाये जैसे नये सहारे।

यों एक-एक कर सारे वस्त्र उतारे,
    निर्ग्रन्थों के कब होते वस्त्र सहारे?
मधुसूदन दौड़े, निकट नेमि के आये,
    क्या कहते? मन ही मन पहिले सकुचाये।

गीले नयनों से मधुसूदन फिर बोले,
अधमुंदे नयन पीड़ा-बोझिल थे खोले।
"यह जीवन के चौथेपन में कर लेना,
फिर विरक्ति को बाँहों में तुम भर लेना।

प्रतिक्षण दिनकर जल वाष्प बना ले जाता,
मिट्टी से अद्भुत स्नेह लौट जल आता।
प्रेमिल अन्तर अमृत-जीवन का तट है,
इसके अभाव में सूना हर पनघट है।

जीवन-तट से तुम दूर कहाँ जाते हो?
तरणी किस सूने तट पर ले जाते हो?
तूफान उठेंगे, किसे पुकारोगे तुम?
त्यागो, जो जीवन में जागा मिथ्या भ्रम।

कोई न किसी की सांसों को हरता हैं,
तेरा मन भी अर्जुन जैसा डरता है।
यह जन्म-मरण का सारा क्रम निश्चित है,
तू बचा रहा सासों को, व्यर्थ भ्रमित है।"

"अग्रज ! विरक्ति की होती अनुपम गति है,
लौकिक जीवन की जाकर होती इति है।
जगते विरक्ति का सूर्य तिमिर भगता है,
रजनी में कब दिन का प्रकाश जगता है।

मैली थी चादर जिस क्षण मैंने ओढ़ी,
प्रतिक्षण हठ करती जाने सांस निगोड़ी।
नौ द्वारे भीतर पंछी अभी टिका है,
जो रूप-राशि के बदले सदा बिका है।

ऋषि-मुनियों तक को जो अनबूझ पहेली,
जीवन अंजलि में शाश्वत बूंद अकेली।
वह बूंद उसी में जीवन का सागर है,
स्नेह-प्रीति की मानव-मन गागर है।

वह कब भरती, कब खाली हो जाती है ?
यह बात समझमें किस-किस के आती ?
मृग-मन जीवन-आंगन में दौड़ लगाता,
उसका रहस्य है जटिल हाथ कब आता ?"

"जीवन - उपवन में जगी हुई तरुणाई,
पतझर की तुमको गंध कहाँ से आई ?
है प्रणय राग से पूरित मृदु शहनाई,
मरघट की उजड़ी धुन कैसे ले आई ?"

"जो प्रश्न तुम्हारा मेरा वह उत्तर है
जो है मेरे भीतर वह ही बाहर है।
मैं आत्मतत्त्व, शाश्वत, अमूर्त, अक्षय हूँ
बाहर भीतर का द्वन्द्व मिटा निर्भय हूँ।

ऋषि-मुनियों को होगी अनबूझ पहेली,
बर्षों से मेरे साथ-साथ वह खेली।
जीवन-पथ की वह मेरी प्रिया सहेली
निर्जन में मुझसे मिलती रही अकेली।

पंछी उड़ने से क्या अन्तर आता है ?
वह किसी डाल पर बैठा मिल जाता है।
पिंजरे का पंछी उड़ आता बंधन मे,
है सम्भावना सदैव अनन्त गगन में ॥

पीड़ा समष्टि की आँखों में जब आती,
पीड़ा की भाषा उस क्षण अर्थ बताती।
प्रस्तर में भी जब मूर्ति उभर आती है,
मानव - प्रतिमा क्यो खंडित हो जाती है ?"

"खंड भी अखण्ड का एक भाग होता है,
हँसता कोई, इसलिये कोई रोता है।
हैं भाग्य लेख के अक्षर बहुत पुराने,
तुमसे जायेंगे नहीं अभी पहचाने।

जीवन है विद्यापीठ, अनुभवों का घर,
जीवन की पुस्तक में अनुभव अंकित कर।
तब राग और वैराग्य समझ पायेगा,
फिर तुझे न कोई समझाने आयेगा।"

"उपकृत हूँ मैं उपदेश तुम्हारा पाकर,
क्या मृत्यु आयेगी मुझको कभी जगाकर ?
अनुभव देही के सारे विस्मृत पाता,
काया की चादर ओढ़ मनुज जब आता।

जाने दो पथ की रज है मुझे बुलाती,
जीवन में आई है मंगल-प्रभाती।
यात्रा अनन्त का मुझे अन्त करना है,
मधुसूदन ! भीतर अमृत का झरना है।

दृग बंद किये मुझको किताब पढ़नी है,
साँसों की अभिनव मूर्ति मुझे गढ़नी है।
खोजूंगा भीतर है असीम गहराई,
करुणा में सोई है जैसे परछाईं।"

"विधि ने राजुल का अनुपम रूप संवारा,
दुर्लभ यौवन दे भू पर उसे उतारा।
युग में सुन्दरता की अनुपम प्रतिमा है,
निरुपमा सदा उसकी न कहीं उपमा है।"

समभाव रहे सुख-दुःख में यह समझाओ,
निर्वाण-दीप हो, ज्वलित सुमार्ग बताओ।
हो मोह हृदय में वह अशेष हो जाये,
आशीषों की छाया से मन ढक जाये।"

"मधुसूदन ! समुद्रविजय बोले—"जाने दो,
सुख की रेखा को सूरज बन जाने दो।
मेरे अन्तस मन का प्रदीप जाता है,
रोये बिन मुझसे नहीं रहा जाता है।

हम नहीं किसी को रोक आज तक पाये,
अपने सुखमय दिन जैसे हुए पराये।
गान्धारी के सौ पुत्र चिता पर सोये,
खोकर सुकर्ण को सारे पांडव रोये।

गांगेय भीष्म का हमने श्राद्ध किया है,
कठिनाई से हर व्रण को अभी सिया है।
उसको जाने दो, मुझको कृष्ण! सम्हालो,
जाने के पहले उसको गले लगा लो।"



नारी : सृष्टि

उसकी अंगुलि पकड़ जगत् ने
चलना तक सीखा है,
उसका आँचल सदा सर्वदा
करुणा से भीगा है।

उस की निर्झरिणी का अमृत
किसने नहीं पिया है?
और कौन सा व्रण उसकी
करुणा ने नहीं सिया है?

उसके मृदु संस्पर्शों से
सीसा तक कट जाता है,
और युगों का दर्द बिना
बाँटे ही बँट जाता है।

निसर्ग की आधार-शिला
उसकी है अद्भुत माया,
युगादि से उसने ही तो
मानव का वंश चलाया।

सबल कर्म-लिपि वह अदृश्य
उसने न राम को छोड़ा,
चरण जा रहे थे किस पथ ?
किस पथ पर उसने मोड़ा ?

विधि का लेखा मिटा हाय कब ?
राम हुऐ वनवासी,
कथा-सूत्र की डोर खींच
ले गई अभागी दासी ।

भविष्य पर है श्याम आवरण
पार नहीं पढ़ पाते,
आने वाले कल की प्रतिमा
आज नहीं गढ़ पाते।

आने वाला दिन क्या
अगला क्षण भी ज्ञात नहीं है ?
ऐसा सूरज कहाँ, कि
जिसके आगे रात नहीं है ?

ज्ञान-कोष में विरक्ति का
दुर्लभतम क्षण आया है,
पुलकित जिसको पाकर
मेरा अन्तर्मन, काया है

जीवन क्या है ? इस
रहस्य का सूत्र हाथ आया है,
है विवेक सर्वोच्च शिखर
चरणों में नत माया है।

वासनाग्नि भीषण विरक्ति के
बीज जला देती है,
त्याग, तपस्या, संयम की
वह आयु घटा देतो है।

लेना जन्म, मृत्यु तट जाकर
फिर विलीन हो जाना,
उदय-अस्त अन्तर घ्रुवना है,
कब किसने पहिचाना ?



मानवता पर कलंक

विचार भी युद्ध और हिंसा का
मानवता पर है कलंक,
    यह आदिकाल से वर्तमान तक
    चला आ रहा रक्त-पंक।

उच्छ्वास, अश्रु एवं पीड़ा
देते हैं नई विषमताएँ
    प्रतिक्षण ही इससे मुरझाईं,
    मानव-मन की सब आशाएँ।

विस्फोटक धरती के नीचे,
वसुधा पर अनगिन अस्त्र-शस्त्र,
    प्रलय का दृश्य उपस्थित करने
    को मानव है स्वयम् व्यस्त।

युद्धों का एकमात्र कारण
अविवेक, इसे लें सभी देख,
    हिंसा की तूली से अंकित
    हो सकते बीभत्स लेख।

रण से, हिंसा से, ले लेता
जब तक न विश्व सारा विराम,
    करुणे जग के व्रण सीने का
    तुम करती रहना सतत काम।

युद्ध के धधकते अंगारे
यदि कोई नहीं बुझायेगा,
तो मानवता की आँखों का
स्वर्णिम सपना मिट जायेगा।

रोको हिंसा के हाथों को,
जो रचते रहते महानाश,
अन्यथा उसी के हाथों से
वसुधा का होगा सर्वनाश।

यदि युद्धों का क्रम यही रहा
तो एक दिवस वह आयेगा,
इतिवृत्त यहाँ अंकित करने
कोई न शेष रह जायेगा।

इसलिये अहिंसा मानवता की
कृति कोई रचनी होगी,
आचार-संहिता के समान
हर युग में वह पढ़नी होगी।

मानव अपने श्रम, कौशल से
मानवता के तू खिला फूल,
माटी महकेगी चन्दन सी
कंचन सी होगी धरा धूल।



नित्य-अनित्य

संसार का सारा समय
आगत-विगत में बँट गया,
है वर्तमान समय क्षणिक,
क्षण बोलते ही घट गया।
गतिशील सरिता-सलिल सा
क्षण दृष्टि के सम्मुख रहा,
आकर गया वह विगत है,
जो आरहा आगत कहा।

जो विगत वह इतिहास है,
अज्ञेय नित भवितव्य है,
वर्तमान से जुड़ना मनुज !
तेरा सदा कर्तव्य है।
गतिशील क्षण सम्मुख गया।
वह दृष्टि ओझल हो गया,
इन ही क्षणों मे मनुज कुछ
पाकर गया, खोकर गया।

पर्याय प्रतिक्षण बदलती
उत्पाद-व्यय उन में सदा
ध्रुवता निरन्तर अछूती
परिवर्तनों में सर्वदा,
लहरें विलीन हुई तथा
है सलिल सारा अवस्थित,
उस भाँति ध्रुवता मृत्यु के
पश्चात् भी है नित्य स्थित।
आकर गई वह स्मृति है
जो आ रही वह कल्पना,
जो दृष्टि के सम्मुख समय
उसको मनुज अपना बना।

जो हाथ से जाये समय
इतिहास हो, अभिलेख हो,
प्रतिक्षण बदलते समय पर
अमृत भरा आलेख हो।



जड़-चेतन

जड़-चेतन दोनों पृथक्, प्रभावित-
करती उनको कर्म-गंध,
उस क्षण तक आत्मा कर्मों से
कैसे हो सकता है अबंध ?

है सलिल पृथक्, है अनल पृथक्
मिलने से देता सदा ताप,
उस भाँति जीव के कर्मों से
चलता रहता है पुण्य-पाप

आत्मा अमूर्त, है बाह्य मूर्त
दोनों दिखते संयुक्त, एक,
आत्मा का मर्म समझने को
अनुभूति चाहिये औ विवेक ।



तृतीय सर्ग

वे चले गये

क्या कहा सखी ! वे चले गये,
मेरे सुखमय क्षण छले गये।

हे सखी ! बता क्या बात हुई ?
दिन में कैसे यह रात हुई ?
स्नेह द्वार क्यों बन्द हुआ ?
ऐसा क्या अन्तर्द्वन्द्व हुआ ?
रथ के पहिये क्यों मोड़ दिये ?
सुख के पंछी क्यों छोड़ दिये ?
सुख की फुहार गिरते-गिरते
यह दु:ख की क्यों बरसात हुई ?
हे सखी ! बता क्या बात हुई ?

तरणी सागर के तट आकर,
क्यों घिरी प्रभंजन में जाकर ?
हँसते-हँसते आँखें रोईं,
किस निष्ठुर ने पीड़ा बोई ?
निर्मम ही भाग्य-विधाता है,
या पूर्वार्जित फल दाता है ?
मेरे सुख असमय छले गये,
क्या कहा, सखी ! वे चले गये ?
अमृत अधरों तक आ छलका
पीयूष व्यर्थ, सौगात हुई।
हे सखी ! बता क्या बात हुई ?

व्रत का संयम का फल पाया
दुर्वासा क्यों पथ में आया ?
पथ से जिसने रथ मोड़ दिया,
सौन्दर्याकर्षण तोड़ दिया,

दे क्या नयन को अश्रु कौन ?
सारी सखियाँ क्यों खड़ीं मौन ?
दुःखमय अधरों को छंद दिये,
पीड़ा के नव अनुबंध दिये।
बिन बादल था सम्पूर्ण गगन
बिन बादल क्यों बरसात हुई ?
हे सखी ! बता क्या बात हुई ?

मैं भीगी बिन बरसात यहाँ,
पीड़ा से कम्पित गात यहाँ।
ये साँसें आती जाती हैं,
पीड़ा को और जगाती हैं।
आँसू निर्झर बन आते हैं,
मेरे सुख घुलते जाते हैं
मैं निशि में जलती दीप-शिखा,
विधि निर्मम, कैसा भाग्य लिखा ?
लगता है कभी न बीतेगी
सदियों लम्बी यह रात हुई।
हे सखी ! बता क्या बात हुई ?

मधुरिम शहनाई बजती थी,
सुख की स्वर-लिपि सी जगती थी।
गूँजता शंख था अम्बर में,
तुरई बजती थी मृदु स्वर में।
संगीत, नृत्य गूँजते जहाँ,
नीरवता व्यापी अभी वहाँ
कलरव का सुख ले गया कौन ?
जो भी दिखता है खड़ा मौन।
अनहोनी होती नहीं, किन्तु—
लगता अनहोनी बात हुई,
हे सखी ! बता क्या बात हुई ?

मुख पर क्यूँ घूँघट डाले है ?
तू नीरवता क्यूँ पाले है ?

तू कहती है प्रभु चले गये,
किसके हाथों वे छले गये ?
गंतव्य कहाँ जाने का है ?
क्या पुनः लौट आने का है ?
परिणय की वेदी सूनी है,
प्रतिक्षण पीड़ा क्यों दूनी है ?
पर आश्रित भौतिक सुख सारे
वे मुरझाते ज्यों छुई-मुई।
हे सखी ! बता क्या बात हुई ?

मत धैर्य बँधा, बतला कारण,
मुझको लगता है आज मरण।
प्रभु चले गये ऊर्जयन्त शिखर,
क्षण भी लगता है संवत्सर ?
बारात दुर्ग तक आई थी,
रोई, हँसती शहनाई थी
स्नेह सनी तरुणाई थी,
खुशियों के सागर लाई थी।
सुख का कलरव क्यों बंद हुआ ?
क्षण में नीरवता व्याप्त हुई।
हे सखी ! बता क्या बात हुई ?

गढ़ जूनागढ़ के द्वारे पर,
संकट पशुगण बेचारे पर।
स्वच्छंद विजन में जाने दो,
इनको सुख-पर्व मनाने दो।
सारथि ! ये भक्षण के निमित्त,
यह सुनकर मेरा खिन्न चित्त।
जिन-वंशज मांस न खाता हूँ,
लज्जा मे डूबा जाता हूँ।
मैं करता हूँ बंधन-विमुक्त
मेरी कैसी बारात हुई ?
हे सखी ! बता क्या बात हुई ?

नित नयी कृष्ण लीला करता,
उसका निर्भय मन कब डरता ?
पथ में काँटे बिखराता है,
फिर स्वयम् बीनने आता है।
वह वर्तमान युग स्रष्टा है,
आगामी कल का द्रष्टा है।
प्रातः बाँसुरी बजाता है,
संन्ध्या में चक्र चलाता है
वह इक अनबूझ पहेली है,
है परिधि बाह्य हर बात हुई,
हे सखी ! बता क्या बात हुई ?



लौटती बारात

कितनी हो दूर चली जाये
कोई बारात
घर की देहरी पर
लौट स्वयम् ही आती है,
पंछी के उड़ने को अनन्त
अन्तरिक्ष मिला
पर याद
नीड़ मे उसे बुला ही लाती है।
लौटी बारात
शिवदिव्या
लिये हाथ में स्वर्ण थाल।
माणिक, मुक्ता बहुरत्नों से
सज्जित,
कंचन की झिलमिल करती दीपमाल।

द्वारे पर मंगल-कलश लिये
गाती सुहागिनें मधुर गीत,
"प्रणय-बंधन से जगती है
अन्तस् में सोई अमित प्रीति।"

लौटी बारात
शहनाई स्वर अवरुद्ध लिये,
निष्क्रिय वादक
सब वाद्य-यंत्र थे मौन पड़े।
नृप समुद्रविजय खोये-खोये,
लगता था कुछ रोये-रोये।
उनकी आँखों के आगे ही,
कर्मों ने कैसे फल बोये ?

बिन युद्ध लड़े ही थके-थके-
से लगते थे अर्जुन सुवीर।
उन्मन थे लक्ष्यभेद में जैसे
चूक गया हो कोई तीर।
आध्यात्मिक अनुभूतियों की
प्रज्ञा विशाल
द्वापर के चर्चित धर्मराज
शिवदिव्या पर पड़ते दृष्टि
आतुर हो पोंछते कभी नीर
और कभी पोंछते स्वेद भाल।

पीड़ित हो शिवदिव्या बोलीं—
"कुछ नही समझ में आता है,
जिस पर भी मेरी पड़े दृष्टि
वह स्वयम् दूर हट जाता है।"

सहसा ही नारद ऋषि बोले—
"आये तो थे, पर चले गये।
नारायण-कृष्ण नहीं दिखते,
द्वापर में कौतुक मात्र कृष्ण फैलाता है,
कांटे बिखराता, फिर बुहारने आता है।
स्फुलिंग ईंधन पर छोड़ गया बंशीवाला।"

सुनकर भीम कुछ हुए विकल।
सहमे-सहमे सहदेव नकुल।
अर्जुन बोले—"ऋषिकुलभूषण!
कृष्ण को लगाते क्यों दूषण?
वाणी को कुछ दीजे विराम।"
सुनकर नारद ऋषि रुके नहीं,
अर्जुन को जागा महाक्रोध,
"नारद! गाण्डीव उठाऊँ क्या?
जिह्वा को कर दूँ छार-छार
तेरे मन में माधव के प्रति
कैसे उपजा यह दुर्विचार?"

नारद मुस्काये, "वत्स ! ऋषि—
शक्ति का तुझको बोध नहीं।
गाण्डीव टाँग ले कंधे पर,
मंत्रों की शक्ति पर तूने की शोध नहीं।
शक्ति के साथ चाहिए थोड़ा सा विवेक,
गाण्डीव देखता है क्या अर्जुन !
मुझे देख।"
भय से सकुचाकर झुके नहीं
"कुरुक्षेत्र-विजय के सूत्रधार
तेरी कीर्ति मैं दूँ उतार।
एकलव्य धनुर्धर था
या तू है, स्वयम्, बोल
कुन्ती लाई वरदान कर्ण से
क्या उसने था दिया मोल ?
तू देख ! कवच-कुण्डल उतार
देवेन्द्र मांगकर लाये जब
उस महामनुज के चरणों में
देवों का उन्नत झुका भाल।

निस छल-कौशल से महामनुज को
युद्ध स्थल में मृत्यु मिली
गंदले पाँवों चलकर आई
यह कीर्ति तुम्हारे गांव-गली
अर्जुन ! शब्दों की शक्ति देख,
प्रज्ज्वलित मंत्र से अग्नि देख।"
युधिष्ठिर चिल्लाये "ऋषिराज !
चरणों मे नत हम सब आज।"

मां शिवदिव्या ने सुनी बात,
नयनों से तब फूटा प्रपात
"प्रिय मधुसूदन जयवंत रहे,
अर्जुन ! विवेक को तू सम्हाल,
ऋषिवर ! क्यों लगे मृषा कहने,

सुनिये, न दीजिए वृथा श्राप,
अनहोनी होती नहीं कभी,
होनी को सकता कौन टाल ?

यह तो कल होने वाला था,
मैंने गोदी में पाला था।
सुरपति ने ही नहलाया था
मैंने देखे अद्भुत सपने
उनका अनुपम सुख पाया था

उसकी मृदु, तुतली वाणी को
मैंने विरक्ति के छंद दिये,
प्रवेश न कर जाये कोई
कल्मष रेखा
वासना के वातायन
सब के सब बन्द किये।
रजनी में प्रतिदिन लोरी जननी गाती है,
लोरी गाकर प्रतिदिन पुत्र को
सुलाती है,
निंदिया तो बालक की स्वाभाविक
वृत्ति है
लोरी गाकर माताएँ पूत जगाती हैं
सो न जायें संस्कार वीरता, संयम के,
इसलिये बात—
वे रोज-रोज दोहराती हैं,
तुतली वाणी में बच्चे जब दोहराते हैं,
अद्भुत ढंग से माताएँ
पूत जगाती हैं।

जब भी मैं लोरी गाती थी
वह अपलक देखा करता था,
लिखता हो अन्तस्तल पर
मेरी गाथाओं का लेखा।

आदि तीर्थंकर वृषभेश्वर
लख तिलोत्तमा का नृत्य-मरण
तत्क्षण पुत्रों को राज्य त्याग
निकले थे करने तपश्चरण।
जब एक मृत्यु का दृश्य
विरक्ति का निमित्त बन सकता है
अनगिन साँसों का मरण देख
नेमि कैसे रुक सकता है ?

यह तो कल होने वाला था,
मैंने गोदी में पाला था
बचपन जीवन का प्रथम छोर,
यौवन में करता है किलोल।
पर यौवन में था नेमिनाथ
उनमन, उदास
मुक्ति-रमणी के वरण हेतु
व्याकुल थे उसके बाहुपाश
जहाँ जाना था, वह चला गया,
कोई न किसी से छला गया।



चतुर्थ सर्ग

कृष्ण द्वारा सान्त्वना

आओ बेटी राजुल ! आओ
यह तो निश्चित कल होना था,
मत आज देख कर पछताओ।
आओ बेटी राजुल ! आओ।

कब कृष्ण भाग्य की रेखाओं को गढ़ता है ?
युग द्रष्टा है, वह मात्र भाग्य-लिपि पढ़ता है।
सन्दर्भ पृथक्, दुःख को समान अनुभूति है,
तेरे क्या, मेरे सुख की खंडित मूर्ति है।
निशिबेला-सी हो मत उदास
तुम भोर-किरण सी मुस्काओ,
आओ बेटी राजुल ! आओ।

श्रृंखला समय के पैरों में क्या पड़ सकती ?
बीता क्षण, कोई युक्ति नहीं लौटा सकती।
गतिमय सरिता की गति न कभी रुकने पाती,
आँसू की धारा लौट नयन में कब आती ?

गति ही जीवन का नाम
समयकी गति के संग बहती जाओ,
आओ बेटी राजुल ! आओ।

समय के प्रवाह से वासना-तट कट जाता है,
आयु-अंजलि में समय ठहर कब पाता है ?
यौवन के स्वर्णिम सपने हैं नश्वर सारे,
गिरते हैं तो गिर जाने दो आँसू खारे।

सब क्षणभंगुर, अस्थिर जल में
मत बिम्ब देख कर पछताओ,
आओ बेटी राजुल! आओ।
व्रण को मत छेड़ो, उसे समय संग भरने दो,
भौतिक इच्छाएँ मरती हैं तो मरने दो।
पीड़ाएँ तुमको स्वयम् मार्ग दिखलायेंगी,
गंतव्य दिखाकर स्वयम् लौट कर जायेंगी।
तुम समय-सिन्धु की लहरों सी
जीवन-पथ पर बढ़ती जाओ,
आओ बेटी राजुल! आओ।

सुन चुका कृष्ण, यह सब कुछ रुक्मिणि के मुख से,
वस्तुतः सुपरिचित है वह नारी के दुःख से।
सब आर्यावर्त नेमि को देना चाहा था,
पर दिव्य पुरुष वह मुक्ति हेतु ललचाया था।
मधुसूदन का है दोष नहीं,
है भाग्य-लेख, मत पछताओ
आओ बेटी राजुल! आओ।



मां शिवदिव्या एवम् राजुल

"माँ ! प्रियतम गये गिरनार शिखर,
उस शैल शिखर पर पर जाऊँगी,
करुणा का पंथ विलोका है,
प्रीति का पंथ दिखाऊँगी।
ममता से उनका परिचय है,
करुणा का भी अति संचय है।
मैं अमर बेलि सी उनके मानस
तरुवर पर छा जाऊँगी।

मिट्टी लघु बीजों को पाकर
फसलों का अर्घ्य चढ़ाती है,
स्नेह, प्रीति के हाथों से
मिट्टी प्रतिमा बन जाती है।
प्रस्तर में जगा देवला भी
वरदान स्वयम् जब देता है,
उजड़े उपवन में तब मधु-ऋतु
नंगे पाँवों चल आती है।

दृग बंद किये निज पलकों में
मकरंद लिये बैठे होंगे,
जिनसे जीवन का रस झरता
मदु छंद लिये बैठे होंगे।
मैं उनकी अन्तस वीणा में
प्रीति के छन्द भर आऊँगी,
नीरस पतझर के स्वर उनके
अधरों से तब रूठे होंगे।

यौवन के स्वर्णिम स्वप्न सभी
आयु के संग झर जाते हैं,
सरिता का सूना तट होते
पंछी देखे उड़ जाते हैं।
यौवन का मृदु उन्माद लिये,
अभिनव स्मृति संसार लिये,
ऐसे साधक बिरले होते
वैराग्य छंद गढ़ जाते हैं।

पल निमिष साधना स्थल की
संयम करता पहरेदारी,
देवत्व स्वयम् साकार वहाँ,
तू संसारी, वह अविकारी।
वासना-चरण, वैराग्य देहरी
पर जा थक जाते हैं,
साहस कर दुर्गम पथ चलते
निर्मल, पावन हो जाते हैं।

अनुभूति देह की हृदय-क्षितिज
के पार नहीं जा सकती है,
मन की वीणा के तारों में
केवल झंकृति आ सकती है।
प्रस्तर में प्राण खोज पाना
है तेरे वश की बात नहीं,
जो निविड़ निशा तूने पाई,
उसका है कहीं प्रभात नहीं।

तू सांध्य-घन्टियों, नूपुर सी
मन्दिर में बज रह जायेगी,
तेरी आशा की किरण तिमिर में
खोजे क्या मिल पायेगी!
ये दृष्टि-सृष्टि के सुख सारे
उनके मानस में हैं अतीत,
देवालय वीतरागता का
तू क्या गायेगी प्रणय-गीत?

भौतिक इच्छाएँ मरघट सी
बैठी उनके मन आंगन में,
तू भोर-किरण सी नाचेगी
ऊर्जयन्त गिरि के कानन में।
तेरी आँखों में तैर रहा,
वह तो सपनों का सपना है,
क्षण बीता, वही अतीत हुआ
भवितव्य देख राजुल ! अपना।

आकाश-कुसुम पाने को जो
धरती पर रह ललचाते हैं,
स्वर्णिम सपनों के मिटते ही
तन्द्रा खुलते पछताते हैं।
तृष्णा के प्रस्तर से विरक्ति
की मूर्ति नहीं खंडित होती,
ढुलकाओ नहीं व्यर्थ राजुल !
मिट्टी में मानस के मोती।

मन की सीपी में स्मृतियों को
मुक्ता तुल्य सहेजा है,
है प्रथम पृष्ठ यह महाकाव्य
जो डुबा अश्रु में भेजा है।
इतिवृत्त लिखूंगी मैं इति तक
आँसू-कण से, मुस्कानों से
सुख-दुःख भविष्य की गोदी में
दिख पाता कब अनुमानों से।



राजुल की यात्रा

द्वारे-द्वारे पर व्यंग्य मिले,
द्वारे-द्वारे पर हँसी मिली।

अंबुज से दृग् स्वर कोकिल सा
मनसिज ने रूप निखारा है,
जिस तूलि से रूप दिया विधि ने
उससे नहीं भाग्य सँवारा है।
कोमल हैं पग, दुर्गम है पथ,
प्रीति की डगर शूलों की गली।
द्वारे-द्वारे पर व्यंग्य मिले,
द्वारे-द्वारे पर हँसी मिली।

क्वाँरी पलकें भीगी-भीगी
ब्याहे अधरों पर व्यंग्य मिले,
शिशुता कौतूहल मे डूबी
काँटे कलिका के संग खिले।
पढ़ सका कौन है भाग्यलेख?
किस युग मे उलझी ग्रंथि खुली?
द्वारे-द्वारे पर व्यंग्य मिले,
द्वारे-द्वारे पर हँसी मिली।

संन्यासी बादल के पीछे
यह पावस की ऋतु कहाँ चली?
वियोग का ग्रीष्म तपाता है
जीवन, उपवन की तरु-अवली
जनश्रुति पीछे-पीछे चलती
यह कैसी उल्टी रीति चली
द्वारे-द्वारे पर व्यंग्य मिले
द्वारे-द्वारे पर हँसी मिली।

प्रीति का प्रपात प्रस्तरों में
पाने को यह व्याकुल गगरी,
पावस में बरस रही जैसे
हो नीर भरी दुःख की बदरी।
पीड़ाओं की वर्षा सहकर
क्या खिल सकती है कोई कली
द्वारे-द्वारे पर व्यंग्य मिले,
द्वारे-द्वारे पर हँसी मिली।

संघर्ष आन्तरिक द्वन्द्वों का
रचने को नव इतिहास चला,
करुणा पीड़ा है घनीभूत
अंकन में असफल काव्यकला।
रवि चला क्षितिज की शैया पर
अनुगामी संध्या साथ चली।
द्वारे-द्वारे पर व्यंग्य मिले
द्वारे-द्वारे पर हँसी मिली॥



पंचम सर्ग

राजुल की स्मृतियाँ

हरित चुनरी ओढ
पावस वधू जब आई,
इन्द्रधनुषी आवरण में
सांझ शरमाई
स्नेह के कुछ बिन्दु पा
माटी महकती थी
वृक्ष की हर डाल पर
कोयल चहकती थी।

शुष्क सरिताओं के आँचल
हुए थे गीले,
जुगनुओं के गात
अब थे अधिक चमकीले।
मृदङ्गों के तरंगित
पुलकित हुए थे प्राण
नहा कर स्निग्ध सा
कुछ हुआ था पाषाण।

लोक-गीतों में गूंजती
ऋषभ की वाणी,
गा रहा था कोई
रघुवर कथा-कल्याणी।
गूँजता समवेत स्वर में
कहीं पर मल्हार,
जगत् के अस्तित्व का
आधार केवल प्यार।

प्रस्तरों के गर्भ से
झरने फूटते थे,
तरल जल की लहर से
प्रस्तर टूटते थे।
किन्तु तुम स्निग्ध
होकर भी हुए पाषाण,
वाग्दत्ता को वरे बिन
कर गये प्रयाण।

नील नभ से लौटते थे
विहंगों के दल
नीड़ में था पक्षियों
का मधुर कोलाहल
प्राण पुलकित गीत गाता
था कभी नीरज,
नीड़ में से झाँकता था
जब कभी सूरज।

नई दुल्हन प्रीति पाती
पद छुपाती थी,
अधर पर मुस्कान उसके
लौट आती थी।
कली को उपवन-पवन
झूला झुलाता था,
प्रीति तट स्नेह में
तब डूब जाता था।

चूमता था पवन,
कलिका मुग्ध होती थी,
हर नयन में प्रकृति
ममता बीज बोती थी।
स्नेह अविरल बुझाता था
धरातल की प्यास,
जोड़ती जलधार जैसे
अवनि और आकाश।

नयन-अंबुज में तुम्हारी
स्मृति का मकरंद,
अधर पर लहरे तुम्हारी
प्रीति के नव छंद।
रूप, यौवन, आयु अँजुलि
में सुमन लाई,
खोजती पद चिह्न
मंजिल तक चली आई।

भावना के सुमन
मंगल-चौक पूरे थे,
क्या पता था स्वप्न
जैसे वे अधूरे थे।
नीड़ में जब था मिलन
का मधुर कोलाहल
विहँसते मेरे दृगों को
दे गये मृग-जल।

प्रणय का पीयूष ले
क्यों आये मेरे द्वार?
जब निभाना था नहीं
किंचित् भी लोकाचार।
जन्म-जन्मों से तुम्हारी
प्रीति पाई है
वही चुनरी ओढ़
राजुल आज आई है।

मैं बनी अभिसारिका
थी प्रणय के पथ की,
मोड़ दी बल्गा कहो
क्यों स्नेह के रथ की?
मृग मृगी को निरख
करुणा से नयन गीले।
बिना पाणिग्रहण रह गये
हाथ क्यों पीले?

लोक के मत में अभी
राजुल कुवाँरी है,
देह से क्या,
प्राण से भी वह तुम्हारी है।
देह से पहले पुरुष
को मन वरण करता,
यात्रा प्रारम्भ पहले
मन चरण करता।

तोड़ लोकाचार, द्वापर
के सभी बंधन,
प्रणयपथ का कर
रही हूँ आज अभिनन्दन।
व्यंग्य-वाणों से बिधा
तन और मेरा मन
तुम रहे यदि मौन
होंगे प्राण भी उन्मन।

कंज-लोचन बंद,
अधरों पर नहीं कम्पन,
देह प्रस्तर सी न
उसमें कोई स्पन्दन।
देह के संग किन्तु
देहातीत लगते हो,
भावना की किस
गुफा में तुम विचरते हो ?

मन नहीं तन के
तुम्हारे पास लगता है,
पर तुम्हारी गंध से
उपवन महकता है।
तरु, लता वातावरण
प्रमुदित हुआ ऐसे,
पा गया मधुमास का
सन्देश हो जैसे।

सूर्य प्रज्ञा प्राप्त करने
रोज आता है,
पर विवश हो याचना
कर लौट जाता है।
रात अपनी बात
मुख से कह नहीं पाती,
पूर्व इसके लौट आती
उषा मदमाती।

बांध नूपुर चरण में
नाची किरण प्रतिदिन,
नयन सन्ध्या तक न खोले
वह गई उन्मन।
तुहिन-कण के अश्रु
ढुलकाती रही हर रात,
लौट जाती प्रात में
तारो भरी बारात।

प्राण से भी प्रिय
प्रणय का गीत लगते हो,
प्राण में जो गूँजता
संगीत लगते हो।
पुलक जाये प्राण
अधरों से अगर बोलो,
लौट आये सुख युगों का,
पलक यदि खोलो।



चिन्तन की ओर

अनजानी आहटें, नई पद
चाप सुन रही हूँ मैं,
कोई दे रहा है दस्तकें
भावना के द्वार पर।
यौवन सुबह की धूप सा,
संध्या में बिखरे रूप सा,
रख दृष्टि, छोड़ कर अतीत
मात्र वर्तमान पर।

हर एक जन्म की यात्रा
जन्म-मृत्यु तट बँधी,
हवा के एक झोंके में
गंध सी बिखर गई।
जर्जर लटकता पात है
उदास-वृन्त-शाख पर,
प्रतिध्वनियाँ गूँजने लगीं
सोना है तुझे राख पर।

शृंगार कर मिली मैं सदा
जन्म-मृत्यु कूल पर,
सुखों की बाट जोहती
दुख का दुकूल ओढ़ कर।
सुख-भी मिला, दुख भी मिला
पर तृप्ति कल्पना लगी।
गई मैं खाली हाथ सदा
हरेक जन्म छोड़कर।

शैशव था कुतूहल भरा
निश्छल-अबोध, मोड़ पर
लेकर समय उसे उड़ा,
तारुण्य हाथ छोड़कर।
जरा के साथ जायेगी
निश्चित ही मृत्यु मोड़ पर,
समय सभी ले जायेगा
हर व्यक्ति को निचोड़ कर।

स्नेह-प्रीति के चरण यात्रा
में साथ-साथ थे,
किसी अजाने मोड़ पर
जाकर हुए उदास थे।
सुख-दुखों के मोड़ पर
गये थे सभी छोड़कर,
विवश खड़े हैं शेष जन
उगलियाँ मरोड़कर।

उत्पाद-व्यय मिला
ध्रुवता यात्रा में साथ थी,
यात्रा में सभी थे उदास
वह नहीं उदास थी।
उसकी हर एक बात,
हमने की सदा अनसुनी,
इसी से खड़ी जिन्दगी
उदास हर एक मोड़ पर।

हर एक बहार-डोली
कहारों के बिना ही गई,
उपवन मे गंध कुछ दिवस
संवर, बिखर के रह गई।
बदलती रही गंध,
बदलते ही पुष्प शाख पर,
पहरा कभी ठहरा नहीं
समय पर और काल पर।

स्नेह-प्रीति, सृष्टि के
अस्तित्व का आधार है,
प्रणय ने आकर किया
और भी शृंगार है।
सुखों के पंछी उड़ गये
मात्र शेष याद है,
अट्टहास समय कर रहा
मनुष्य के शृङ्गार पर।

प्रत्येक जन्म के मुझे
कर्म-बंध तोड़ना,
परिधि को छोड़, यात्रा
को केन्द्र पर है मोड़ना।
विषधर के पास विषम विष है
मणि भी उसके पास है।
भीतर अरूप आत्मतत्त्व
चल उसी के संकेत पर।

नयी सी दिव्य चेतना
समीप मेरे आ रही।
अनुभूति आत्मतत्त्व की
प्रकाश से नहा रही
शाश्वत सुखों की ज्योति का
भीतर ही कल्पवृक्ष है,
निर्वाण के पथ पर चलूँ
भौतिक सुखों को छोड़कर।



मुक्ति-चदरिया नई

तूने भी ओढ़ी पिया, मैंने भी ओढ़ी,
ओढ़त मैली हुई, मैली चदरिया हुई।

राग-द्वेष की कर्म रेख से
सुख-दुःख रेख पड़ी,
भीतर थी इक अनगढ़ प्रतिमा
दृष्टि न वहाँ पड़ी
तन के संग जो मन से अखंडित
वही सुहागिन हुई
मैली चदरिया हुई।

जब-जब काजल दिया आँख में
आँख सजल होती।
मैं पगली समझी आँसू को
ममता के मोती।
हास-विलास, शृंगार सभी गये
तब मैं सुहागिन हुई।
मैली चदरिया हुई,

नौ भव की मेरी प्रीति पुरानी
आज परीक्षा हुई,
प्रिय के आलिंगन में आत्मा
है वैराग्यमयी।
तेरे संग ओढ़ूँगी पिया मैं
मुक्ति-चदरिया नई,
मैली चदरिया हुई।

नूपुर बाँध चरण में नाची
प्रतिक्षण बढ़ी उदासी,
जनम-जनम से भव-पनघट पर,
मैं प्यासी की प्यासी।
मन-सरवर की सदियों पुरानी
काई सब छट गई
मैली चदरिया हुई।

कोमल चरण शिखर तक आई
राह भरी तरुणाई,
व्रण पगतल के रिसते जैसे
मेंहदी की पाई अरुणाई।
विरह-कोइलिया कूक-कूक के
उपवन छोड़ गई
मैली चदरिया हुई।

माँ रोई, पिता पास न आये
जगती की निठुराई,
कर शृंगार प्रिय पास चली है
यह नारी अधव्याही।
प्रिय बन गये सिया सी मैं भी
पीछे-पीछे गई,
मैली चदरिया हुई।

आत्म-ज्ञान अनमोल रत्न,
काया के हाथ बिका,
बदले रूप कई, जन्म-मरण का
कब व्यापार रुका?
दुल्हन, डोली, कहार वही हैं
केवल बरात नई,
मैली चदरिया हुई।



षष्ठ सर्ग

राजुल : तीर्थंकर के चरणों में

नेमि प्रभु के चरण में राजुल हुई नतशीश
ज्योति किरण फूटी,
सहसा अधरों पर हुआ कम्पन
स्तब्धता टूटी।

वेदना से कट गया है
वासना का तट,
प्रीति का पंछी उड़ा
सूना हुआ पनघट।
प्रणय और अनुराग की
निस्सारता हुई ज्ञात,
तोड़ता सम्बन्ध केवल
एक उल्कापात।

वासना की गोद में
हर मनुज खोया है,
स्मृति की ओढ़ चादर
मनुज सोया है।
साँस पा हर जन्म में
यह जीव रोया है।

निरंतर करते रहे
हम व्रणों का उपचार,
जगत के संबन्धों का
है नाम लोकाचार।
यात्रा में कौन
किसके साथ जाता है ?
सूर्य एकाकी
क्षितिज में डूब जाता है

पूर्व जन्मों की नहीं
स्मृति कोई पास
देह पाती कुछ क्षणों
को तृप्ति का आभास ।
पर अतृप्ति लिये
हुए हा लौटती है प्यास,
शिथिल होते वासना के
अति मृदुल भुजपाश ।

टहनियों पर मृदुल
कलियां गीत गाती हैं,
कुछ दिवस में फूल
बन कर मुस्कुराती हैं ।
खिले सुमनों के भी
झरने के दिवस आते ।
टहनियों पर व्यंग्य से
फिर शूल मुस्काते ।

परिभ्रमण से क्लांत
सूरज डूब जाता है,
प्रात होते रश्मियों
संग लौट आता है ।
सृष्टि में संयोग से
जो लगा मेला है,
भीड़ में भी आदमी
हर क्षण अकेला है ।

प्रस्तरों में मूर्ति गढ़
पुलकित किये पाषाण,
किन्तु मानव स्वयं
होता जा रहा निष्प्राण ।
पराये दुख मे नहीं
अब वह पिघलता है,
घृणा एवं द्वेष का
लावा उगलता है ।

समर्पण

कल्पांत अवधि से मैं तेरे
जीवन-आंगन की भोर किरण,
हम साथ साथ थे जन्मों से
संयोग तोड़ता रहा मरण,
इस बार मरण की छाती पर
इच्छित है रखना तुम्हें चरण,
पगली मेरी चिर पीड़ा को
तेरे चरणों में मिले शरण।

नेमि-कैवल्य

अज्ञान-तिमिर औ कर्म-कलुष के
शिथिल हुए थे बाहुपाश,
मेघाच्छादित नभ से घन के हटते ही
जैसे फैला प्रकाश।

चन्दन के बिरवों से लिपटे
विषधर विमुक्त हो जाते हैं।
प्रज्ञा की छैनी लिये हाथ में
जब मयूर दल आते हैं।

संवर से कर्म-प्रवाह रुका
निर्जरा कर्म-बंधन काटे,
ले गया समय निज अंजलि में
सुख-दुख के जितने क्षण बांटे।

प्रज्ञा-दर्पण में प्रतिभासित
नित भूत, भविष्यत्, वर्तमान
मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय में
सर्व श्रेष्ठ कैवल्य ज्ञान

है शब्दातीत कैवल्य ज्ञान
चैतन्यमूर्ति शाश्वत ललाम,
नश्वर तूली अविनश्वर का
कैसे कर सकती गुण बखान?

वह मात्र ज्ञान की अनुभूति,
अनुभूति से दर्शन होते
वे रूप धूप का जाने क्या?
जिनके दो नयन नही होते।

जन-मंगल के हित दिव्यध्वनि
जगतो को देती है प्रकाश,
कृत्रिम दीवारें वर्ग-भेद की
गिरें, मनुज का हो विकास।



मधुसूदन का प्रणाम

"प्रज्ञा की तूली अंकित कर
पाती है केवल अमर गान,
सुख-दुःख की अनुभुति से उठ कर
व्यक्ति बना करता महान।
हे सिद्ध पुरुष ! हे तीर्थंकर !
स्वीकारो माधव का प्रणाम,
द्वापर को तीर्थंकर नेमि,
त्रेता को जैसे मिले राम।

है कहाँ सृष्टि का आदि, अन्त ?
जड़-चेतन का है क्या विधान ?
जीव और पुद्गल में अन्तर क्या ?
व्याख्या कीजे करुणानिधान।
जीव और पुद्गल दो भिन्न तत्त्व,
ऐसी हैं उनकी पर्यायें
ध्वनि पर आधारित हैं जैसे
जगती की सारी भाषाएँ।

संघटित युद्ध करने में ही
बीता यौवन, पौरुष सारा,
जय मिली युद्ध में, मानस में
कोई भी शत्रु नहीं हारा।
भौतिक सुख के पक्षीगण की
होती न ऊर्ध्वगामी उड़ान,
कुछ देर पंख फैलाते ही
पंखों में आती है थकान।"

ओ वर्तमान के प्रलयंकर
तुम आगामी तीर्थंकर हो,
अर्हन्त-वीथिका से हो कर,
जाने वाले तुम शंकर हो।
भुजपाश वासना के प्रणय के
नश्वर हैं बंधन, तोड़ो
इन्द्रियां अश्व, मन है वल्गा
इनको विरक्ति पथ पर मोड़ो।

अनगिन योद्धाओं के मरने से
धरती पौरुष हीन हुई,
अनगिन विधवाएँ द्वापर में
जिनकी अब बुद्धि मलीन हुई
युद्धों से युद्ध रोकने के
हो चुके समस्त प्रयास विफल,
द्वापर की पीड़ा है अनन्त,
दृग में अवशेष कहाँ दृगजल ?

सम्पूर्ण विश्व में बिखरे है
षड् द्रव्य और कुल सात तत्त्व,
है जन्म-मृत्यु भय से विमुक्त
जगती मे केवल आत्मतत्त्व।
पुद्गल अजीव है तत्त्व तथा
धर्म, अधर्म, आकाश, काल,
बनती- मिटती इनकी पर्यायें
ध्रुवता को छूता न काल।

अवगाहन को है अन्तरिक्ष,
गतिशील बनाने हेतु धर्म,
है ज्ञात तुम्हें गति-अवरोध
सृष्टि मे केवल है अधर्म।
पर्याय बदलती है जब भी
तब काल सहायक होता है।
षड् द्रव्यों के अतिरिक्त जगत में
और नहीं कुछ होता है।

मधुसूदन और गजकुमार

पुलकित प्राणों में नव अनुभूति भरकर,
मधुसूदन बैठे ज्यों विरक्ति के रथ पर।
गीता के अमृत छंदों का उद्गात,
उत्सुक था बनने को वह आत्म-नियन्ता।

सोपान प्रथम जन मंगल का चढ़ते हैं,
निर्वाणपंथ पर उनके पग बढ़ते हैं
"मैं न्याय-नीति से मेटूँगा जन के दुख
हिंसा-विमुक्ति से जन-जन को दूँगा सुख।"

घूमा अतीत था उनके दृष्टि-पटल पर
वह लौट गया, सुख-दुख के क्षण अंकित कर।
पीड़ा समष्टि की आँखों में घिर आई।
सबके मंगल को जन्मा कृष्ण-कन्हाई।

स्मृति अतीत की लाई चित्र अनहोने,
द्वापर के सब महापुरुष लगते बौने।
पितामह को उसने शर-शैय्या पर देखा,
निज के हाथों में दिखी रक्त की रेखा।

पहिये निकालता वसुधा-रक्त भिगोई,
वह और नहीं था छोड़ कर्ण को कोई।
उसमें अजस्र थीं करुणा की धाराएँ,
जन-मंगल की ज्यों बिखरी दिव्य ऋचाएँ।

सुर-लोक गया जो सुयश धरा से उठकर,
वह मर्त्य-लोक में फैला सिसक-सिसक कर।
क्या पाप और क्या पुण्य, बड़ी उलझन है ?
बाहर और भीतर में कैसी अनबन है ?

लगता जग का कोई अज्ञात नियंता,
है देह प्राण दोनो का वह अभियंता।
अदृश्य उँगलियाँ ही भविष्य लिखती हैं,
सृष्टि में आँखों से वे कब दिखती हैं?

कर्ता ही स्वयम् भोक्ता, शाश्वत क्रम है,
करे कर्म कोई, भोगे कोई, यह भ्रम है।
तीर्थंकर के वे शब्द याद आते हैं,
'कर्ता के पीछे कर्म सदा जाते हैं।'

बीहड़ में सुरभित सुमन खिले मिल जाते
पर उपवन में श्रम करने पर मुरझाते।
प्राचीर उठाते, भव्य भवन गढ़ते हैं,
उनके निवास झोपड़ियों में मिलते हैं।

संकल्प एक था भरी रहे श्रुति-गागर,
संचित उसमें है संस्कृतियों का सागर।
कहीं छलक न जाये वह बहुमूल्य धरोहर,
ऋषि-मुनियों के आनन से आई होकर॥

'हे तात! आप डूबे हैं किस उलझन में
नंगे पाँवों से चलते आप विजन में।
क्या किसी द्रौपदी पर संकट आया है?
कर्तव्य कौन सा यहाँ खीच लाया है?"

"प्रिय गजकुमार! नेमीश्वर प्रभु आये हैं,
हरिवंश-मुकुट-मणि तीर्थंकर आये हैं
हरिवंश हो गया अमर, देवता पाकर,
त्रेता रघु का, द्वापर है उनका चाकर।

अपलक देखा, पर तृप्ति नहीं होती है,
संसृति-सागर का वह दुर्लभ मोती है।
अधरों पर झरते छंद, हृद्-कमल खिलता,
प्राची से ज्यों तेजस्वी सूर्य निकलता।

भाषा है पंगु व शब्द नहीं मिलते हैं,
माटी में खिलते पद्म नेमि चलते हैं।
ये चरण-चिन्ह, युग-युग पूजे जायेंगे,
रैवत के कण-कण, शंकर बन जायेंगे।

चरणों की रज अपनी अंजलि में भर कर,
ले जाते हैं सब नृपति, रंक निज घर पर।
जो व्यक्ति दृष्टिगत प्रभुवर के आते हैं,
वह मानो अमृत-सिंचित हो जाते हैं।
पावस में धुल स्निग्ध हुई ज्यों माटी,
मलयज ने मादक गंध अभी ज्यों बाँटी।
थे आत्म-विलीन प्रिय गजकुमार कुछ ऐसे,
पारस ने परस लिया लोहे को जैसे।

स्तब्ध मौन साधनरत ज्यों संन्यासी
पावस आने से पूर्व धरा ज्यों प्यासी।
निर्झर से झरते शब्द कृष्ण के मुख से
पुलकित हो गजकुमार सुनते थे सुख से।
बाहर थी नीरवता, भीतर कोलाहल,
ज्यों शांत-सिन्धु के तल में हो बडवानल।
रवि उदय पूर्व का उस क्षण था सन्नाटा,
राग और विराग को तौल रहा मन कांटा।

धुंधली सी स्मृति, प्रतिध्वनि बन कर आई,
नयनों में नीर भरी बदली सी छाई।
श्रीमत् के मुख से नेमि की गाथा को सुनकर,
नन्हा-सा दीप जलेगा मुक्तिपंथ पर।

क्या करते वे, शर निकल चुका तरकश से
हो गये मौन हरि, क्या कहते निज मुख से ?
हरि मौन हुए गज की तन्द्रा-सी टूटी,
प्राणों को ज्यों छू गई संजीवनबूटी।
प्राणों में पुलकन और देह में सिहरन,
आन्तरिक क्रान्ति से तत्क्षण बदला जीवन।
रूपान्तरित थी प्राणों के संग काया,
वैराग्य उतर जीवन-आँगन में आया।

"हरिवंश-शिरोमणि, दुर्लभ-चिन्तामणि हैं,
हीरक-कणिका से कट न सके वह मणि हैं।
उनका परिचय अब तक जो रहा पराया,
सौभाग्य परम वह हरि से मैंने पाया।"

हरि के चरणों में विनत शीश को रखकर,
गज बोले, "जाऊँगा मैं मुक्तिपंथ पर।
प्राणों में अकुलाहट बढ़ती ही जाती,
अज्ञात शक्ति रैवत पर मुझे बुलाती।"

"गत युवा-पीढ़ियाँ मिटीं महाभारत में,
उच्छ्वास और आँसू हर घर आरत में।
यह वर्तमान पीढ़ी विरक्ति-पथ जाती,
द्वापर की उलझन नहीं समझ में आती।"

कुछ दिवस पूर्व कुल-वधू गेह में आई,
सुन्दरता की मादक ज्योति से नहाई।
सपने सब उसके टूट बिखर जायेंगे,
यौवन के ये दिन लौट नहीं आयेंगे।

यदुवंश-मुकुट-मणि वसुदेव के प्यारे,
मेरे प्यारे द्वापर के राजदुलारे।
आदेश पिता का लेकर दीक्षा लेना,
यह पंथ अपरिचित, सहसा चरण न देना।"

"शिशुता अबोध, कर्तव्य भार ढोती है,
काया का बोझा व्यर्थ जरा ढोती है।
यौवन मे ही संग्राम लड़े जाते हैं,
हिमगिरि से ऊँचे शैल चढ़े जाते है।"



अष्टम सर्ग

अमर शिल्पी

अमर शिल्पी गढ़ रहा
दिव्यता की अनुपम प्रतिमाएँ,
भाषा पंगु, व्यंजना व्याकुल
और सारी उपमाएँ।
शब्द मात्र से काट रहा था
मन-सरवर की काई,
विषय-वासना, कल्मष-रेखा
उभर जनों पर आई।
अन्तस् का कल्मष कटता था
एक दृष्टि पड़ते ही,
दुर्लभ रत्न कान्ति की पाता
खराद पर चढ़ते ही।
लक्ष्य नियत करते आये हैं
युग-युग से तीर्थंकर
मनुज ! स्वयम् ही चलना होगा
अपने-अपने पथ पर।
स्वर्ण-मुकुट वस्त्राभूषण का
ढेर लगा कुछ ऐसे,
किसी गली में कूड़े का
अम्बार लगा हो जैसे।
निष्प्रभ सैनिक अस्त्र, शस्त्र
यों छूटे उनके कर से
हिंसा स्वयम् विरक्त हुई हो
जैसे आज समर से।
निर्विकार निरपेक्ष दृष्टि
जब गजकुमार की पाई,
विमल प्रव्रज्या लेने को
तब मचल उठी तरुणाई॥ ■

सांसों को मिल रही अमरता

लौट रहे थे तीर्थंकर
रैवत के उत्तुंग शिखर से।
कौतूहल, उत्सुकता में अनगिन आँखें,
पलक पाँवडे बिछा,
नेमि को देख रही थीं।

कुलवधुएँ जो दूर गाँव से
ब्याही जूनागढ़ आई थीं
धीरे धीरे इंगित करके
"वे ज्योतिर्मय हैं तीर्थंकर
और साध्वियों मध्य चल रही
राजुल माता"—पूछ रही थीं।

"चौथेपन की आयु,
सांस का नहीं भरोसा।
दर्शन कर लेने दो,
रूप परस लेने दो,
पावन रूप सुधा दृग अंजलि
में भर कर पी लेने दो।

आदि वृषभ की परम्परा का
युग में तीर्थंकर आया है।
तट के बंधन तोड़, दृगों में
खुशियों का गंगाजल आया।
ओ सुहागिनो! चुप हो जाओ
वे हैं ज्योतिर्मय तीर्थंकर
और साध्वियों मध्य चल रहीं राजुल माता।

बिना त्याग के जीवन को
मिल रही अमरता, ले लेने दो।
युगों-युगों तक दृश्य यही बस जाये नयन में,
रूप सुधा को विह्वल होकर पी लेने दो
नन्हीं-नन्हीं बूँदों को
आँखों में कुछ क्षण जी लेने दो।"

स्वर्ण-किरीट उतार, त्याग शृंगार-आभरण
नेमि प्रव्रज्या हेतु पधारे
करने आत्मा का आराधन।
युग की श्रेष्ठ रूपसी राजुल,
अनिन्द्य सौन्दर्य की प्रतिमा,
जिसके अप्रतिम गुणों की
द्वापर में है कही न उपमा,
दुहिता उग्रसेन की
राजुल को, आये थे वरने।
अन्तस् में आह्लाद
अधर पर गीत सुहाने,
किन्तु मृग-मृगी के नयनों में
लिखी, पढ़ी करुणा की लिपि,
पीड़ा की भाषा।
विह्वल होकर बोले थे—
"जग को कौन दे गया,
ऐसी विषम समस्या।
रथ रोको, सारथि !
दो हृदयों का मिलन,
उत्सर्ग कोटि सांसों का,
अन्त नहीं दिखता
मानव की लिप्सा का।"
द्वारकाधीश श्री कृष्ण पीताम्बर ओढ़े,
नेमि को बाँहों में लेकर,
प्रतिबोधित करते—
"कुछ दिन रहो प्रीति की छाँहों में

काँटे बहुत मिलेंगे,
विरक्ति की राहों में।"
किन्तु प्रव्रजित हुए देव,
कोटि-कोटि कंठों ने,
जयघोष किया, आरती उतारी।

उस क्षण जूनागढ़ की माटी में
बाल-बालिकाओं के जो समूह,
खेला करते थे,
धुंधली धुधली
स्मृति से वे जूझ रहे थे।
वे है नेमिनाथ तीर्थंकर

और साध्वी राजुल माता,
नही किसी से,
स्वयम् आपसे पूछ रहे थे।
नेमि प्रव्रज्या के उपरान्त,
जन्म था जिनका
नेमि और राजुल की प्रणय-प्रवृज्या
की गाथाएँ सुनकर बड़े हुए थे,
ठगे-ठगे से देख रहे थे।
सौन्दर्य की प्रतिमा थी,
राजुल माँ अब भी
और श्रेष्ठ शिल्पी की कृति से
नेमि लगे थे।

कही पढ़ा था,
वीरता मे विवेक
का होता अभाव है।
उन्हे लगा, उन्होंने कोई
झूठा किस्सा कहीं पढ़ा है।
क्योंकि दृष्टि के सम्मुख उनके
अभी-अभी कुछ चरण पड़े थे।

उनमें नूतन-नूतन से
सन्देश जड़े थे।
त्याग, तपस्या पर कोई
पुस्तक पढ़ने की नहीं जरूरत।
त्याग, तपस्या, संयम की प्रतिमुर्ति,
कुछ क्षण पहिले
आत्मजयी तीर्थंकर स्वयम् खड़े थे।

कार्तिक वदी अमावस्या के अन्धकार में
किरणें रखने,
दीप जलाने प्रभु आये थे।

देखो तेजोबलय, ज्योति का पुंज,
दिव्यता का प्रतीक,
देहयष्टि के आस-पास
बिखराता किरणें।
हरिवंश के प्रखर सूर्य की
आभा से लज्जित होकर ही,
सूरज ओट लिए बदली को
और गगन निस्सीम पराजित।
नन्हीं नन्हीं बूंदें विखराता,
अन्तस् का अह्लाद छिपाये
कब छिप पाता?

जन्म-मृत्यु से भरे जगत में,
'अरिहन्त' नाम ही मात्र रसायन।
हर अर्थी संग मरघट जाता,
मुक्ति प्रदाता।
नश्वर देह, शाश्वत आत्मा,
जग-जन में विश्वास जगाता।

चरण पड़े वह माटी महकी।
कीर्ति-पक्षिणी
बिना पंख के उड़ती थी आगे-आगे

समुद्रविजय-शिवदिव्या की
आँखों के तारे,

द्वापर के वे राजदुलारे,
जरासंध से कुरुक्षेत्र में,
जूझे थे वे महासमर में।
फूंका पाँचजन्य था,
शेषनाग-शैया पर सोये।
छोड़ सभी नश्वर बंधन,
बनने निकले आत्म-विजेता।
उनको पाकर शताब्दियों से
पुलकित हुए प्राण धरा के
आगम-अथाहज्ञान परिपूरित
होती है तीर्थंकर-वाणी।
वही वाग्देवी कहलाती,
वही सरस्वती कल्याणी।

करुणापूरित तीर्थंकर के नयनों में
संसृति की पीड़ा व्यापी।
लोक-मंगल के लिए प्रभु ने
नंगे पाँवों धरती नापी
लौटे फिर सर्वोच्च शिखर पर
मिला वहाँ पर सुख का सागर,
वीतराग अमृत वाणी से
स्वर मुखरित थे—
"भीड़ भरी यात्रा में
यात्री सदा अकेला।"

